TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182087
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 C491D Accession No. G.H679

Author

Title देवी चौधरानी

This book should be returned on or before the date last marked below.

देवी चौधरानी

उपन्यास-सम्राट्

श्रीबंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

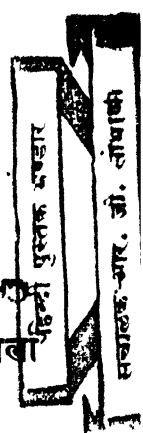

अनुवादक

श्री सूर्य्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

सन् १६३६

Published by
K Mittra,
at The Indian Press, Ltd,
Allahabad.

Checked 1969

Printed by
A. Bose,
at The Indian Press, Ltd
Benares-Branch.

देवी चौधरानी

पहला खण्ड

पहला परिच्छेद

"ओ पी—ओ पी पी—ओ प्रफुल्ल—ओ मुँहझौंसी !"

"आई, माँ !"

माँ ने पुकारा, लड़की पास आई; पूछा—क्यों, माँ ?

माँ बोली—जा न, घोषों के यहाँ से एक बैंगन माँग ला।

प्रफुल्ल ने कहा—मुझसे नहीं होगा। मुझे माँगते लाज लगती है।

माँ—तो खायगी क्या ?—आज घर में कुछ है जो नहीं।

प्र०—तो सिर्फ़ भात खाऊँगी। रोज़ रोज़ माँगकर क्यों खाऊँ ?

माँ—जैसी क़िस्मत लेकर आई है; चाहते कङ्गाल ग़रीबों की कौन सी लाज ?

प्रफुल्ल ने जवाब नहीं दिया। माँ ने कहा—तो तू चावल चढ़ा ले, मैं तरकारी की कोशिश में जाती हूँ।

प्रफुल्ल ने कहा—तुम्हें मेरे सिर की क़सम है, अब माँगने न जाओ। घर में चावल हैं, नमक है, पेड़ में कच्चे मिर्चे हैं,—औरत ज़ात के लिए इतना बहुत है।

लाचार, प्रफुल्ल की माँ सम्मत हुई। अदहन चढ़ चुका था, माँ चावल धोने चली।

चावल की धूँची* हाथ में लिये माँ ने गाल पर हथेली रक्खे कहा—"चावल कहाँ ?" प्रफुल्ल को दिखाया, आधी मुट्ठी चावल रह गये हैं, एक आदमी के लिए भी अधपेटा नहीं होगा।

माँ धूँची लिये बाहर निकली। प्रफुल्ल ने पूछा—कहाँ जाती हो ?

माँ—उधार चावल ले आऊँ। भात भी क़िस्मत में कहाँ मिलता है ?

प्र०—हम पर लोगों का कितना चावल उधार है, पटा नहीं सके। चावल उधार लेने न जाओ।

माँ—अभागिन की लड़की, खायगी क्या ? घर में एक पैसा भी नहीं।

प्र०—उपास करूँगी।

माँ—उपास करके कितने दिन जियेगी ?

प्र०—नहीं तो मरूँगी।

---

* इसमें, बङ्गाल में चावल धोये जाते हैं। चावल इसमें भर दिये जाते हैं धोते वक्त, पानी से उठाने पर छोटे छेदों से पानी निकल जाता है।

माँ—मैं मरूँ तब जो हो करना। तू उपास करके मरे, मैं आँख से नहीं देख सकूँगी। जैसे भी हो, भीख माँगकर तुझे खिलाऊँगी।

प्र०—भीख भी क्यों माँगनी होगी? एक दिन के उपास से आदमी नहीं मरता। आओ न, माँ-बेटी आज जनेऊ निकालें। कल बेचकर कौड़ियाँ करेंगे।

माँ—सूत कहाँ है?

प्र०—क्यों, चरखा है।

माँ—रूई की पिड़ियाँ?

तब प्रफुल्लमुखी सर झुकाकर रोने लगी। माँ धूँची हाथ में लेकर फिर चावल उधार लेने चली। प्रफुल्ल ने माँ के हाथ से धूँची छीनकर दूर रक्खी, कहा—माँ, मैं क्यों उधार करके खाऊँगी? मेरे तो सब कुछ है?

आँसू पोंछकर माँ ने कहा—सब कुछ तो है माँ, भाग्य में आया कहाँ?

प्र०—क्यों नहीं आता माँ, मैंने कौनसा अपराध किया है कि ससुर का अन्न रहते मैं खाने को नहीं पाऊँगी?

माँ—इस अभागी के पेट से पैदा हुई—यह अपराध, और तेरा भाग्य! नहीं तो तेरा अन्न खाये कौन?

प्र०—सुनो माँ, मैंने आज मन से निश्चय किया है, ससुर का अन्न भाग्य में आये तो खाऊँगी, नहीं तो फिर नहीं खाऊँगी। तुम माँगकर उधार कर जिस तरह चाहो, लाकर खाओ। खाकर, मुझे साथ लेकर ससुराल छोड़ आओ।

माँ—यह क्या माँ ! यह भी कहीं होता है ?

प्र०—क्यों नहीं होता माँ ?

माँ—बिना लेने के लिए आये कहीं ससुराल जाना चाहिए ?

प्र०—दूसरे के यहाँ माँगकर खाना चाहिए और बिना लेने के लिए आये अपनी ससुराल नहीं जाना चाहिए ?

माँ—वे कभी तुम्हारा नाम जो नहीं लेते।

प्र०—न लें, इससे मेरा अपमान नहीं। जिन पर मेरे खाने-पहनने का भार है, उनसे अन्न की भीख माँगने में मेरा अपमान नहीं। अपना धन आप माँगकर खाऊँगी, इसमें मुझे लाज क्या है ?

माँ चुपचाप रोने लगी। प्रफुल्ल ने कहा—तुम्हें अकेली छोड़कर मैं जाना न चाहती, लेकिन मेरा दुःख दूर होगा तो तुम्हारा भी घटेगा, इस भरोसे जाना चाहती हूँ।

माँ-बेटी में बहुत बातें हुईं। माँ समझी, बेटी की सलाह ठीक है। तब जो कुछ चावल बच रहा था, माँ ने पकाया। लेकिन प्रफुल्ल ने किसी तरह भी नहीं खाया। लिहाज़ा माँ ने भी नहीं खाया। तब प्रफुल्ल बोली—अब और व्रत बिताकर क्या होगा ? लम्बा रास्ता है।

उसकी माँ ने कहा—आ, तेरे बाल बाँध दूँ।

प्रफुल्ल ने कहा—नहीं, रहने दो।

माँ ने सोचा—रहे, मेरी बेटी को सजाना नहीं पड़ता।

बेटी ने सोचा—रहे, बन-सँवरकर क्या किसी का दिल लेने जाना है ? छिः !

अस्तु, दोनों मैले कपड़ों में ही घर से बाहर निकलीं।

दूसरा परिच्छेद

वरेन्द्रभूमि में भूतनाथ नाम का गाँव है। वहीं प्रफुल्ल की ससुराल है। प्रफुल्ल की दशा जैसी भी हो, उसके ससुर हरवल्लभ बाबू बहुत बड़े आदमी हैं। उनके बड़ी ज़मींदारी है, दोमञ्जिला बैठकखाना, ठाकुरबाड़ी, नाटमन्दिर, दफ़्तर, खिड़की की तरफ़ बगीचा-तालाब चारदीवार से घिरा। वह जगह प्रफुल्लमुखी के नैहर से छः कोस है। छः कोस रास्ता चलकर भूखी माँ और बेटी उस धनी के घर पैठीं।

पैठते प्रफुल्ल की माँ के पैर नहीं उठे। प्रफुल्ल कङ्गाल की लड़की है, इसलिए हरवल्लभ बाबू घृणा करते थे, यह बात नहीं। कङ्गाल देखकर भी हरवल्लभ बाबू ने लड़का ब्याहा था; क्योंकि लड़की परमा सुन्दरी थी। उन्हें वैसी लड़की और कहीं नहीं मिली, इसलिए विवाह किया था। इधर प्रफुल्ल की माँ ने, कन्या बड़े घर जा रही है इस खुशी से, अपना सर्वस्व स्वाहा कर ब्याह किया था—उस ब्याह में उनकी रही-सही पूँजी खतम हो गई थी। तब से अन्न के कङ्गाल हैं। लेकिन भाग्य के फेर से उस साध के ब्याह का उल्टा फल हुआ। सर्वस्व स्वाहा करके भी—उनका सर्वस्व भी कितना?—वह विधवा सब तरफ़ पूरा नहीं कर सकी। बरयात्रियों को तो देश, काल और पात्र की विवेचना से पूड़ी-मिठाई और उत्तम फलाहार करवाया, लेकिन कन्या पक्षवालों के लिए रहा केवल चूड़ा और

दही। इसे पड़ोसी कन्यापक्षवालों ने अपमान समझा। उन लोगों ने नहीं खाया, उठ गये। इससे प्रफुल्ल की माँ से उनका मन-मुटाव और झगड़ा शुरू हुआ। प्रफुल्ल की माँ ने बड़ी गालियाँ दीं। पड़ोसियों ने बड़ा गहरा बदला चुकाया।

थाली-छुआई के दिन हरवल्लभ ने समधियाने के पड़ोसियों को भी न्योता दिया। लेकिन वे लोग कोई गये नहीं। एक आदमी भेजकर कहला भेजा कि कुलटा और जो जाति से गिरी है उससे हरवल्लभ बाबू नातेदारी निभा सकते हैं—बड़े आदमी को सब कुछ शोभा देता है, मगर हम लोग ग़रीब हैं, जाति ही हमारा सहारा है, हम लोग जातिभ्रष्टा की कन्या की थाली-छुआई में पानी भी नहीं पियेंगे। भरी सभा में इस बात का प्रचार किया गया। प्रफुल्ल की माँ अकेली है, विधवा है, लड़की को लेकर घर में रहती है—तब उम्र भी ज़्यादा नहीं हुई थी, बात असम्भव नहीं मालूम पड़ी। ख़ास तौर से हरवल्लभ को जान पड़ा, ब्याह की रात पड़ोसियों ने ब्याह-वाले घर भोजन नहीं किया। पड़ोसी झूठ क्यों कहेंगे? हरवल्लभ ने विश्वास कर लिया। सभा के और लोगों ने भी विश्वास कर लिया। न्योते गये सभी लोगों ने भोजन किया, लेकिन नई बहू का छुआ भोजन किसी ने नहीं किया। दूसरे दिन हरवल्लभ ने बहू को नैहर भेज दिया। तभी से प्रफुल्ल और उसकी माँ उनके लिए त्याज्य हो गईं। तभी से फिर कभी उन्होंने इनकी ख़बर नहीं ली, लड़के को भी लेने नहीं दी। लड़के का दूसरा विवाह किया। प्रफुल्ल की माँ ने दो-एक बार कुछ सामान भेजा था, हरवल्लभ ने

वापस कर दिया था। इसी लिए आज उस मकान में पैठते प्रफुल्ल की माँ के पैर काँप रहे थे।

लेकिन जब आया गया है, तब फिर लौटा नहीं जा सकता। माँ और बेटी अकेली हिम्मत के सहारे घर में पैठीं। उस समय कर्त्ता अन्तःपुर में दुपहर की सुखवाली नींद में थे। गृहिणी अर्थात् प्रफुल्ल की सासु जी पैर फैलाये बैठी पके बाल निकलवा रही थीं, ऐसे समय प्रफुल्ल और उसकी माँ पहुँचीं। प्रफुल्ल के मुँह पर डेढ़ बालिश्त का घूँघट था। उसकी उम्र अब अट्ठारह साल है।

गृहिणी ने इन्हें देखकर पूछा—तुम कौन हो जी ?

प्रफुल्ल की माँ ने लम्बी साँस छोड़कर कहा—क्या कहकर परिचय हूँ ?

गृहिणी—क्यों, परिचय भी क्या कहकर दिया जाता है ?

प्रफुल्ल की माँ—हम लोग नातेदार हैं।

गृहिणी--नातेदार ? कौन नातेदार जी ?

वहाँ तारा की माँ नाम की एक नौकरानी काम कर रही थी। वह दो-एक बार प्रफुल्ल के नैहर जा चुकी थी—पहले-पहल शादी के बाद ही। उसने कहा—अजी हाँ, अजी पहचाना, पहचाना, कौन, समधिनजी ?

(उस समय दासियाँ गृहिणी का रिश्ता लेती थीं)

गृहिणी--समधिनजी ? कौन समधिनजी ?

तारा की माँ—दुर्गापुर की समधिनजी, तुम्हारे लड़के की बड़ी सासुजी।

गृहिणी समझीं—मुँह अप्रसन्न हो गया। बोलीं—बैठो।

समधिन बैठीं, प्रफुल्ल खड़ी रही। गृहिणी ने पूछा—यह औरत कौन है जी ?

प्रफुल्ल की माँ ने कहा—तुम्हारी बड़ी बहू।

गृहिणी—नाखुश होकर कुछ देर चुपचाप बैठी रहीं। फिर पूछा—तुम कहाँ आई थीं ?

प्रफुल्ल की माँ—तुम्हारे ही मकान आई हूँ।

गृहिणी—क्यों जी ?

प्रफुल्ल की माँ—क्यों और क्या, मेरी लड़की को ससुराल नहीं आना चाहिए ?

गृहिणी—आना क्यों नहीं चाहिए ? लेकिन सासु-ससुर जब ले आयेंगे तब आयेगी। भलेमानस की लड़की क्या आकर सिर पर सवार होती है ?

प्रफुल्ल की माँ—सासु-ससुर अगर सात जन्म तक नाम न लें ?

गृहिणी—नाम ही न लेंगे तो आना क्यों ?

प्रफुल्ल की माँ—खिलाये कौन ? मैं अनाथ विधवा हूँ, तुम्हारे बेटे की बहू को खिलाऊँ कहाँ से ?

गृहिणी—अगर खिला ही नहीं सकोगी, तो पेट में सँभाला क्यों था ?

प्रफुल्ल की माँ—तुमने क्या खाने-पहनने का हिसाब करके बेटा पेट में सँभाला था ? ऐसा ही था तो उसी के साथ बेटे की बहू के खूराक-कपड़े का हिसाब क्यों नहीं जोड़ लिया ?

गृहिणी—अरी मुई, मकान पर चढ़कर तकरार करने आई है!

"नहीं, तकरार करने नहीं आई। तुम्हारी बहू अकेली नहीं आ सकती थी, इसी से साथ छोड़ने आई हूँ। अब, तुम्हारी बहू पहुँच गई, मैं चली।" यह कहकर प्रफुल्ल की माँ मकान से बाहर हो गई। अभागी का तब भी भोजन नहीं हुआ था।

माँ गई, लेकिन प्रफुल्ल नहीं। जैसा घूँघट काढ़े थी, वैसा ही काढ़े खड़ी रही। सासु ने कहा—तुम्हारी माँ गई, तुम भी जाओ।

प्रफुल्ल नहीं हिली।

गृहिणी—हिलती क्यों नहीं?

प्रफुल्ल नहीं हिली।

गृहिणी—क्या आफ़त है! अब क्या तुम्हारे साथ एक आदमी लगाना होगा?

अब के प्रफुल्ल ने मुँह का घूँघट उठाया। चाँद जैसा मुँह; आँखों से आँसुओं की धारा बह रही है। सासु ने मन ही मन सोचा—"अहा! ऐसी चाँद जैसी बहू लेकर घर-बार नहीं कर पाई!" मन कुछ नर्म पड़ा।

प्रफुल्ल ने बड़ी धीमी आवाज़ में कहा—मैं जाने के लिए नहीं आई।

गृहिणी—लेकिन क्या करूँ, बेटी, मेरी क्या यह ललक नहीं कि तुम्हें लेकर घर-बार करूँ? लोग पाँच तरह की बातें कहते हैं—कहते हैं अलग कर देंगे, इसलिए तुम्हें छोड़ना पड़ा है।

प्रफुल्ल—माँ, अलग किये जाने के डर से कब किसने अपना बच्चा छोड़ दिया है ?　क्या मैं तुम्हारी सन्तान नहीं ?

सासु का मन और नर्म हुआ। बोलीं—क्या करूँ माँ, जाति का डर है।

प्रफुल्ल पहले की तरह धीमी आवाज में बोली—सही है कि मैं अजाति हूँ, कितनी शूद्राएँ तुम्हारे यहाँ दासी का काम कर रही हैं, मैं तुम्हारे घर दासी बन कर रहूँ तो क्या दोष है ?

गृहिणी और समझ नहीं सकीं। बोलीं—लड़की लक्ष्मी है, रूप में भी, बातचीत में भी। अच्छा, जाऊँ, देखूँ, मालिक के पास, वे क्या कहते हैं ?

प्रफुल्ल तब चापकर बैठी। उसी समय एक किवाड़े की आड़ से एक चौदह साल की लड़की ने, वह भी सुन्दरी है, मुँह में आड़ा-घूँघट, प्रफुल्ल को हथेली के इशारे बुलाया। प्रफुल्ल ने सोचा, यह और क्या ?　उठकर बालिका के पास गई।

——

तीसरा परिच्छेद

जब गृहिणी देवी हिलती-डोलती हाथ की बहुँटिया के बन्द खोदती हुई कर्ता महाशय के कमरे में पहुँचीं, तब कर्ता महाशय की आँखें खुल चुकी थीं, वे हाथ-मुँह धो चुके थे, हाथ पोंछ रहे थे। देखकर मालिक के मन को मथकर छान लेने के मतलब से गृहिणी बोलीं—किसने नींद उखाड़ी? मैं इतना मना करती हूँ, लेकिन कोई सुनता ही नहीं।

मालिक ने मन ही मन कहा—"नींद उखाड़ने की आँधी तुम्हीं हो। आज शायद कोई जरूरत है।" खुलकर बोले—किसी ने उखाड़ी नहीं। खूब सोया हूँ—क्या बात है?

चेहरे को मुसकान से उभाड़कर गृहिणी बोलीं—आज एक घटना हो गई है, कहने आई हूँ।

इस तरह भूमिका बाँधकर और कुछ-कुछ नथ और बहुँटिया हिलाकर—क्योंकि, उम्र अभी पैंतालीस साल की ही है—गृहिणी ने प्रफुल्ल और उसकी माता का आना और बातचीत का ब्योरा शुरू से आखीर तक सुनाया। बहू का चांद के टुकड़ा सा मुँह और मीठी बातें याद कर बहुत कुछ उसकी तरफ खिंचकर बोलीं। लेकिन तन्त्र-मन्त्र न चला। मालिक का मुँह वैशाख के मेह की तरह अन्धकारपूर्ण हो उठा। उन्होंने कहा—इतनी बड़ी

हिम्मत! वह बागदी-बेटी हमारे घर पैठे! अभी झाड़ू मारकर उसे बिदा कर दो।

गृहिणी ने कहा—छि: छि:! ऐसी बात भी कहनी चाहिए? हज़ार हो—बेटे की बहू है—और बागदी* की लड़की भी कैसे हुई? लोगों के कहने से ही हो जाता है?

गृहिणी देवी हारे हाथ में खेलने बैठीं, इसलिए बदरङ्ग भरती चलाने लगीं। लेकिन किसी तरह भी कुछ नहीं हुआ, 'बागदी-बेटी को झाड़ू मारकर बिदा करो' यही हुक्म क़ायम रहा।

गृहिणी अन्त में गुस्से में आकर बोलीं—"झाड़ू मारना हो, तुम्हीं मारो; मैं अब तुम्हारी घर-गृहस्थी की बातों में नहीं रहूँगी।" यह कहकर तमतमाती हुई बाहर चली आईं। जहाँ प्रफुल्ल को बैठाल गई थीं, आकर देखा, प्रफुल्ल नहीं थी।

प्रफुल्ल कहाँ गई है, यह पाठक भूले नहीं होंगे। एक दरवाज़े की आड़ से घूँघट काढ़कर एक चौदह साल की लड़की ने हथेली के इशारे उसे बुलाया था। प्रफुल्ल वहीं गई हुई है। उस कमरे के भीतर प्रफुल्ल के पैठते ही उसने दरवाज़ा बन्द कर लिया।

प्रफुल्ल ने पूछा—कपाट क्यों दिये?

लड़की ने कहा—कोई न आये इसलिए। तुमसे दो बातें करूँगी भाई।

---

* बागदी बङ्गाल की एक नीच क़ौम है। बागदी भी मछली मारते हैं, लेकिन हमारे यहां के मल्लाह उनसे अच्छी जाति के हैं। मल्लाहों का पानी चलता है, बागदी का नहीं।

प्रफुल्ल ने पूछा--तुम्हारा नाम क्या है भाई ?

उसने कहा--मेरा नाम है सागर, भाई !

प्र०—तुम कौन हो भाई ?

सा०—मैं, भाई, तुम्हारी सौत हूँ।

प्र०—तुम क्या मुझे पहचानती हो ?

सा०—अभी तो, दरवाज़े की आड़ से मैंने सब कुछ सुना।

प्र०—तो तुम्हीं मालकिन—गृहिणी हो ?

सा०—दुर, सो क्यों ? जले भाग—और क्या, मैं क्यों वह होने गई ? मेरे क्या वैसे ही दाँत ऊँचे हैं, यामैं उतनी काली हूँ ?

प्र०—वह क्या—किसके दाँत ऊँचे हैं ?

सा०—क्यों, जो मालकिन—गृहिणी है।

प्र०—वह और कौन है ?

सा०—नहीं जानतीं ? तुम कैसे भी जानो, कभी आई तो हो नहीं, हमारे एक और सौत है, नहीं जानतीं ?

प्र०—मैं तो अपनी छोड़कर एक और शादी की ही बात जानती हूँ—सोचा था, तुम वही हो।

सा०—नहीं, वह वही है। मेरी तो अभी तीन साल हुए शादी हुई है।

प्र०—वह शायद बड़ी बदसूरत है ?

सा०—रूप देखकर मुझे रुलाई आती है।

प्र०—इसी लिए शायद फिर तुमसे शादी की ?

सा०—नहीं, सो नहीं ! तुमसे कहती हूँ, किसी से कहना मत। (सागर बहुत धीरे-धीरे बातें करने लगी।) मेरे बाप के बड़ा धन है। मैं बाप की इकलौती लड़की हूँ। तभी उस धन के लिए—

प्र०—समझी, अब और नहीं कहना होगा। लेकिन तुम सुन्दरी हो, जो बदसूरत है वह कैसे मालकिन—गृहिणी बनी ?

सा०—मैं बाप की अकेली सन्तान हूँ, मुझे भेजते नहीं; और मेरे बाप से और ससुर से बहुत बनती नहीं। इसी लिए मैं यहाँ कभी रहती नहीं ! काम-काज पड़ने पर कभी लाते हैं। यही दो चार दिन हुए, आई हूँ, फिर जल्द जाऊँगी।

प्रफुल्ल ने देखा, सागर खासी लड़की है, सौतवाली डाह इससे नहीं होती। उसने पूछा—मुझे बुलाया क्यों ?

सा०—तुम कुछ खाओगी ?

प्रफुल्ल हँसी, पूछा—क्यों, अभी खाऊँगी क्यों ?

सा०—तुम्हारा मुँह सूखा है। तुम लम्बा रास्ता चलकर आई हो। तुम्हें प्यास लगी है। किसी ने पूछा नहीं, इसलिए तुम्हें बुलाया है।

प्रफुल्ल ने अभी तक कुछ नहीं खाया। प्यास के मारे जान होठों पर आ गई थी। लेकिन जवाब दिया—सासु जी गई हैं ससुर जी के पास, मन लेने। मेरे भाग में क्या होता है, बिना जाने मैं यहाँ कुछ खाऊँगी नहीं।

सा०—नहीं-नहीं, इनका कुछ तुम्हें खाना नहीं। मेरे बाप के यहाँ के सन्देश हैं—बड़े अच्छे सन्देश।

यह कहकर सागर कुछ सन्देश ले आकर प्रफुल्ल के मुँह में ठूँस देने लगी। लेहाज़ा प्रफुल्ल ने कुछ खाया। सागर ठण्ढा पानी ले आई, प्रफुल्ल ने पिया, देह ठण्ढी हुई। फिर उसने कहा—मेरा तो मन जुड़ा गया, लेकिन मेरी माँ बिना खाये है, मर जायेगी।

सा०—तुम्हारी माँ कहाँ गई ?

प्र०—क्या मालूम ? मुमकिन है, रास्ते पर खड़ी हो।

सा०—एक काम करूँ ?

प्र०—क्या ?

सा०—दादी को उनके पास भेज दूँ ?

प्र०—वे कौन हैं ?

सा०—ससुरजी की रिश्ते की बुआ—इसी गृहस्थी में रहती हैं।

प्र०—वे क्या करेंगी ?

सा०—तुम्हारी माँ को खिलायेंगी-पिलायेंगी।

प्र०—माँ इस मकान में कुछ नहीं खायेंगी।

सा०—चलो, मैं क्या यही कह रही हूँ ? किसी दूसरे ब्राह्मण के घर।

प्र०—जो हो, करो; माँ का कष्ट अब और नहीं सहा जाता।

सागर चकित की तरह दादी के पास पहुँची और सारा हाल समझाकर कहा। दादी ने कहा—माँ, ठीक तो, गृहस्थ के घर उपासी रहेंगी !—अकल्याण जो होगा।" दादी प्रफुल्ल की माँ

की खोज में निकलीं। सागर ने लौटकर प्रफुल्ल को संवाद दिया। प्रफुल्ल ने कहा—अब भई, जो क़िस्सा सुना रही थीं, सुनाओ।

सा०—क़िस्सा और क्या, मैं तो यहाँ रहती नहीं, रह भी नहीं पाऊँगी। मेरी क़िस्मत मिट्टी के आम की जैसी है—ताक़ पर रक्खी रहूँगी, देवता के भोग में कभी नहीं लगूँगी। लेकिन तुम आई हो तो जिस तरह भी हो, रहो।

प्र०—रहूँगी, इसी लिए तो आई हूँ, लेकिन जब रह पाऊँ तब न?

सा०—हाँ, देखो; ससुर जी की अगर सलाह न हो तो अभी न चली जाना।

प्र०—बिना गये क्या करूँगी? फिर किस लिए रहूँगी? रह सकती हूँ, अगर—

सा०—अगर क्या?

प्र०—अगर तुम मेरा जन्म सार्थक करा सको।

सा०—वह किस तरह होगा?

प्रफुल्ल मुस्कराई। लेकिन तभी मुस्कराहट बुझ गई, आँखों से आँसू टपकने लगे। कहा, तुम नहीं समझीं?

सागर तब समझी! कुछ सोचकर, एक लम्बी साँस छोड़कर बोली—तुम शाम के बाद इस कमरे में आकर बैठी रहना। दिन के वक्त तो मुलाक़ात होगी नहीं—।

पाठक याद रक्खें.....हमारे क़िस्से की तारीख़ सौ साल (अब डेढ़ सौ साल) पहले है। चालीस साल पहले भी युवतियाँ कभी दिन में पति-दर्शन नहीं पाती थीं।

प्रफुल्ल ने कहा—क़िस्मत में क्या होता है, यह पहले मालूम कर आऊँ। इसके बाद तुम से मुलाक़ात करूँगी। भाग्य में जो भी रहे, एक बार पति के दर्शन कर जाऊँगी। वे क्या कहते हैं, सुन जाऊँगी।

यह कहकर प्रफुल्ल बाहर आई। देखा, उसकी सासु उसकी खोज कर रही हैं। प्रफुल्ल को देखकर गृहिणी ने पूछा—कहाँ थीं माँ तुम ?

प्र०—मकान और कमरे देख रही थी।

गृहिणी—अहा, तुम्हारा ही घर है बेटा, लेकिन क्या करूँ ? तुम्हारे ससुरजी किसी तरह राज़ी नहीं हो रहे हैं।

प्रफुल्ल के सर पर वज्र टूटा। सर पकड़कर बैठ गई। रोई नहीं—चुप किये रही। सासु को बड़ी दया हुई। गृहिणी ने मन ही मन सोचा कि एक दफ़ा और नथ हिलाकर देखूँगी। परन्तु यह खुलकर नहीं कहा, सिर्फ़—कहा, आज अब कहाँ जाओगी, आज यहीं रहो, कल सुबह जाना।

प्रफुल्ल ने सर उठाकर कहा—हाँ, रहूँगी। एक बात ससुरजी से पूछिएगा। मेरी माँ चर्खा कातकर पेट पालती है, इसमें एक आदमी का एक वक्त का भोजन पूरा नहीं होता। पूछिएगा—मैं किस तरह पेट चलाऊँगी ? मैं बाग़दी होऊँ—चमार होऊँ—हूँ तो उनकी पुत्रवधू। उनकी पुत्रवधू किस तरह गुज़र करेगी ?

सासु ने कहा—"ज़रूर कहूँगी।" इसके बाद प्रफुल्ल उठ गई।

———

चौथा परिच्छेद

सन्ध्या के बाद उसी कमरे में सागर और प्रफुल्ल द्वार बन्द करके चुपचाप बातचीत कर रही थीं, ऐसे समय किसी ने आकर द्वार पर थपकी दी। सागर ने पूछा—कौन ?

"मैं हूँ।"

सागर प्रफुल्ल की देह दबाकर चुपे-चुपे बोली—बोलना नहीं। वही खूसट आई हुई है।

प्र०—सौत ?

सा०—हाँ, चुप।

जो आई थी, उसने कहा—कौन हो तुम कमरे में ? बोलतीं क्यों नहीं ? जैसे सागर बहू का गला सुना न ?

सा०—तुम कौन हो ? जैसे नाइन बहू का गला सुना न ?

"ऐ गाज गिरे क़िस्मत पर, मैं नाइन-बहू की तरह हूँ क्या ?"

सा०—तो तुम कौन हो ?

"तेरी सौत ! सौत ! सौत ! नाम है नयन-बहू।"

(बहू का नाम है नयनतारा; लोग नयन-बहू कहकर पुकारते हैं, सागर को सागर-बहू।)

सागर ने तब बनावटी व्यस्तता से कहा—कौन ? दीदी ? बलाएँ लूँ, तुम क्यों नाइन-बहू जैसी होने लगीं ? वह तो कुछ साफ़ है !

नयन—मेरी मौत!—मैं क्या उससे भी काली हूँ? पर सौत ऐसी ही होती है, फिर भी अगर चौदह साल की न होती!

सा०—चौदह साल की हुई तो क्या हुआ?—तुम तो सत्रह साल की हो?—तुमसे मेरे रूप भी है और जवानी भी।

न०—रूप और जवानी लेकर बाप के यहाँ बैठी-बैठी धो-धोकर पीना। मेरी जैसे मौत भी नहीं, इसी लिए तेरे पास बात पूछने आई।

सा०—कौन सी बात दीदी?

न०—तूने दरवाज़ा ही नहीं खोला, तो बात क्या कहूँ? सरे-शाम से दरवाज़ा क्यों बन्द कर लिया री?

सा०—भई, मैं छिपकर दो सन्देश खा रही हूँ। तुम नहीं खातीं क्या?

न०—अच्छा, खा खा। (नयन खुद भी सन्देश बहुत पसन्द करती है) पूछ रही थी कि और किसी एक का आना हुआ है क्या?

सा०—और किसी एक का आना क्या? स्वामी का?

न०—गाज पड़े, ऐसा भी होता है?

सा०—होता तो अच्छा होता। हम दोनों बाँट लेतीं। तुम्हारे हिस्से में नया देती।

न०—राम राम! ऐसी बात भी कोई ज़बान पर लाती है?

सा०—मन में?

न०—तू मुझे, जो इच्छा, वही क्यों कहेगी?

सा०—तो भई, क्या पूछोगी, बिना समझाकर कहे मैं किस तरह जवाब दूँ ?

न०—कहती हूँ, मालकिन की शायद एक और बहू आई है ?

सा०—कौन बहू ?

न०—वही मोची-बहू ।

सा०—मोची ? कहाँ, मैंने तो नहीं सुना ।

न०—मोची होगी या बागदी !

सा०—यह भी नहीं सुना ।

न०—सुना नहीं। हमारी एक बागदी सौत है ?

सा०—कहाँ ? नः ।

न०—तू बड़ी नटखट है । वही तो, जो पहली शादी की है ।

सा०—वह तो बाम्हन की लड़की है ।

न०— चल, बाम्हन की लड़की है ! ऐसा होता तो लेकर घर न करते ?

सा०—कल अगर तुम्हें बिदा करके मुझे लेकर घर करें तो तुम बागदी की लड़की हो जाओगी ?

न०—तू मुझे गाली देगी क्यों री दईमारी ?

सा०—तू एक दूसरी को गाली क्यों दे रही है री दईमारी ?

न०—मर तू, चल; मैं सासुजी से जाकर कहती हूँ, तू बड़े आदमी की बेटी है, इसलिए जो जी में आता है, मुझे कहती है ।

यह कहकर नयनतारा उर्फ़ खूसट झमकती हुई लौटने को हुई कि सागर ने प्रमाद देखा। पुकारा—नहीं दीदी, लौटो, लौटो। घाट हुई, दीदी, लौटो! यह लो, दरवाज़ा खोले देती हूँ।

नयनतारा गुस्से में थी—लौटने की बड़ी इच्छा नहीं थी। मगर कमरे के भीतर, दरवाज़ा बन्द करके सागर ने कितने सन्देश खाये हैं, देखने की कुछ तबियत हुई, इसलिए लौटी। कमरे के भीतर पैर रखते ही देखा, सन्देश नहीं कोई एक औरत बैठी है। पूछा—यह और कौन है?

सा०—प्रफुल्ल।

न०—वह फिर कौन है?

सा०—मोची-बहू।

न०—यह सुन्दरी?

सा०—तुमसे तो नहीं?

न०—चल, अब जला मत, तुझसे तो नहीं।

पाँचवाँ परिच्छेद

इधर कर्त्ता महाशय एक पहर रात बीते घर भोजन के लिए आये। गृहिणी पङ्खा झलती हुई थाली के पास शोभित थीं। थाली में मक्खी नहीं, फिर भी नारी-धर्म की रक्षा के लिए मक्खी उड़ाना होगा। हाय, कौन पापी नराधम इस परम रमणीय धर्म का लोप कर रहे हैं? गृहिणी के पाँच दासियाँ हैं, परन्तु स्वामी की सेवा के लिए, किसकी मजाल जो पास जाय।

कर्त्ता ने भोजन करते करते पूछा—क्या बागदी-बेटी चली गई?

गृहिणी ने मक्खी उड़ाकर, नथ हिलाकर, कहा—रात को अब वह कहाँ जायगी? रात को कोई अतिथि आता है तो तुम नहीं खेदते, और मैं उस बहू को निकाल दूँ?

कर्त्ता—अतिथि हो तो अतिथिशाला में जाय, यहाँ क्यों?

गृहिणी—मैं निकाल नहीं सकूँगी, मैं तो कह चुकी हूँ। निकालना हो तो तुम्हीं निकालो। बड़ी सुन्दर बहू है लेकिन।

कर्त्ता—बाग्दियों के यहाँ ऐसी दो-एक सुन्दर होती हैं। अच्छा तो मैं ही निकालता हूँ। बुला तो रे ब्रज को।

कर्त्ता के लड़के का नाम ब्रज है। एक नौकरानी ब्रज को बुला लाई। ब्रजेश्वर की उम्र इक्कीस-बाईस की होगी। अनिन्द्य-सुन्दर पुरुष, पिता के पास विनीत भाव से आकर खड़ा हुआ—बात करने की हिम्मत नहीं।

देखकर हरवल्लभ ने कहा—बेटा, तुम्हारे तीन स्त्रियाँ हैं, याद है ?

व्रज चुप रहा।

"पहली शादी—याद है—वह एक बागदी की लड़की है ?"

व्रज नीरव है। बाप के सामने बाईस साल का, हीरे की धार होने पर भी उस समय बात नहीं करता था। अब जितना बड़ा मूर्ख लड़का होता है, उतनी लम्बी स्पीच झाड़ता है।

कर्त्ता कहने लगे—वह बागदी-बेटी आज यहाँ आई है। जबरदस्ती रहेगी। मैंने तुम्हारी गर्भधारिणी से कहा कि झाड़ू मारकर निकाल दो। लेकिन औरत औरत पर हाथ नहीं उठा सकती, यह तुम्हारा काम है। तुम्हें ही अधिकार है, दूसरा कोई स्पर्श नहीं कर सकता। तुम आज रात को झाड़ू मारकर उसे निकाल देना। नहीं तो हमें नींद नहीं आयेगी।

गृहिणी ने कहा—छिः, बेटा, स्त्री-जाति पर हाथ न उठाना। उनकी आज्ञा रखनी होगी और मेरी कोई बात ही नहीं चलेगी ? खैर, जो इच्छा हो, करो; लेकिन भली बात कहकर उसे बिदा करना।

व्रज ने बाप की बात का जवाब दिया—"जो आज्ञा", माँ की बात का जवाब दिया—"अच्छा"।

यह कहकर व्रजेश्वर कुछ देर खड़ा रहा। उसी अवसर पर गृहिणी ने कर्ता से पूछा—तुम बहू को खेद तो दोगे, लेकिन वह पेट किस तरह पालेगी ?

कर्ता ने कहा—जो तबियत हो, करे; चोरी करे चाहे डाका डाले या भीख माँगे।

गृहिणी ने व्रजेश्वर से कह दिया—खेदने के समय बहू से यह बात कह देना। उसने पूछा था।

व्रजेश्वर पिता के पास से बिदा होकर बूढ़ी दादी के कुञ्ज में गये। देखा, बूढ़ी दादी तद्गतचित्त से माला जप रही हैं और मच्छड़ उड़ा रही हैं। व्रजेश्वर ने पुकारा—दादी!

दादी—क्यों, भाई?

व्रज—आज, सुना, नई ख़बर है?

दादी—नई क्या? सागर ने मेरा चर्ख़ा तोड़ डाला है, वह? पर वह लड़की है, तोड़ डाला तो तोड़ डाले। चर्ख़ा कातने का उसका जी चला था—

व्रज—यह नहीं—यह नहीं। पूछता हूँ, आज क्या—

दादी—सागर को कुछ कहना मत। तुम लोग जीते रहो, मेरे बहुत से चर्ख़े हो जायँगे। लेकिन बूढ़ी औरत—

व्रज—भला मेरी बात भी सुनोगी?

दादी—बूढ़ी औरत—कब हूँ कब नहीं—दो-चार जनेऊ निकाल कर बाम्हन को देती हूँ, बस। लेकिन, ख़ैर!

व्रज—मेरी बात सुनो, नहीं तो जितने चर्ख़े होंगे, सब मैं ही तोड़ डाला करूँगा।

दादी—क्या कह रहे हो, चर्ख़े की बात नहीं?

व्रज—नहीं, वह नहीं। मेरे दो ब्राह्मणियाँ हैं, जानती हो न?

दादी—ब्राह्मणी ? हे ईश्वर ! जैसी ब्राह्मणी नयन-बहू है, वैसी ही ब्राह्मणी सागर-बहू—मेरे हाड़ तक चबा गई—केवल रूप की कहानी कहो—रूप की कहानी कहो—रूप की कहानी कहो ! भाई, इतनी रूप की कहानियाँ कहाँ से लाऊँ ?

ब्रज—रूप की कहानी रहे ।

दादी—तुमने जैसे कहा, रूप की कहानी रहे, वे लोग कहाँ छोड़ती हैं ? अन्त में वही विहङ्गम-विहङ्गमी की कहानी सुनाई । अच्छा, सुनो कहती हूँ । एक वन में सेमर का एक बड़ा पेड़ था । उसमें एक विहङ्गम, एक विहङ्गमी रहती थी—

ब्रज—ग़ज़ब रे ग़ज़ब ! दादी करती क्या हो ? इस समय रूप की कहानी ! मेरी बात तो सुनो ।

दादी—तुम्हारी और बात क्या है ? मैंने सोचा, रूप की कहानी सुनने आये हो—तुम्हारे और काम तो है नहीं ।

ब्रजेश्वर ने मन ही मन सोचा, कब बूढ़ियों को स्वर्ग-प्राप्ति होगी । खुलकर कहा—मेरे दो ब्राह्मणियाँ हैं और एक बाग्दिन । कहते हैं, बाग्दिन आज आई है ।

दादी—बला लूँ, बाग्दिन क्यों, वह तो बाम्हन की लड़की है ।

ब्रज—आई है ?

दादी—हाँ ।

ब्रज—कहाँ है ? एक दफ़ा मुलाक़ात नहीं हो सकती ?

दादी—हाँ, मैं मुलाक़ात कराकर तुम्हारे माँ-बाप की आँखों का काँटा बनूँ ! इससे विहङ्गम-विहङ्गमीवाली कहानी सुनो ।

ब्रज—डरो मत। माँ-बाप ने मुझे बुलाकर कहा है, उसे खेद दो। लेकिन बग़ैर मुलाक़ात हुए उसे खेदूँ किस तरह? तुम दादी हो, तुम्हारे पास खोज लेने आया हूँ।

दादी—भाई, मैं बूढ़ी जरठ, श्रीकृष्णजी को जपती हूँ, और अरवे चावल खाती हूँ। रूप की कहानी सुनो तो सुना सकती हूँ। बान्दिन की बात में भी नहीं हूँ, बाम्हनी की बात में भी नहीं।

ब्रज—इस बुढ़ापे में कब तुम डाकुओं के हाथ पड़ोगी?

दादी—ऐसी बात मत कह। डाकुओं का बड़ा भय है! क्या मुलाक़ात करेगा?

ब्रज—नहीं तो क्या तुम्हारा माला जपना देखने आया हूँ?

दादी—सागर-बहू के पास जा।

ब्रज—सौत भी सौत से मुलाक़ात करायेगी?

दादी—तू जा भी। सागर ने तुझे बुलाया है। कमरे में जाकर बैठी है। ऐसी लड़की नहीं होती।

ब्रज—चर्ख़ा तोड़ दिया है, इसलिए? नयन से कह दूँगा, वह भी जैसे, एक चर्ख़ा तोड़ दे।

दादी—हाँ, हाँ; कहाँ सागर और कहाँ नयन! तू जा जा।

ब्रज—जाऊँ तो बान्दिन देखने को मिलेगी?

दादी—बूढ़ी की बात तो मान। क्या आफ़त भी सर आई। मेरा माला-जप नहीं हुआ। तेरे बूढ़े दादा के तिरसठ ब्याह हुए थे; लेकिन चौदह सालवाली हो या चौहत्तर साल वाली, कहाँ, किसी के बुलाने पर तो कभी 'नहीं' नहीं कहते थे।

ब्रज—बूढ़े दादा को अक्षय स्वर्ग प्राप्त हो, मैं चौदह साल वाली की खोज में चला।

दादी—जा जा! मैं उलटी माला जप गई।

ब्रजेश्वर सागर के यहाँ चला।

———

छठा परिच्छेद

सागर को ससुराल में दो कमरे मिले थे—एक नीचे, दूसरा ऊपर। नीचे वाले कमरे में वह बैठकर पान लगाती थी, बराबर उम्र-वालियों से खेलती और गप करती थी। ऊपर वाले कमरे में रात को सोती थी। दिन को नींद लगती थी तो उसी कमरे में जाकर दूवार बन्द करती थी। अस्तु, ब्रजेश्वर दादी की रूप-कथा की जलन से बचकर उसी ऊपरवाले कमरे में गये।

वहाँ सागर नहीं, लेकिन उसकी जगह एक और कोई है। अनुभव से समझे, यही वह पहली स्त्री है।

बड़ी मुश्किल पड़ी। दोनों का सम्बन्ध बड़ा घनिष्ठ है। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के अर्द्धाङ्ग हैं; पृथ्वी में सब सम्बन्धों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। लेकिन कभी की मुलाक़ात नहीं। कभी बातचीत नहीं हुई। किस तरह प्रसङ्ग छिड़े? कौन पहले बोले? विशेष रूप से, एक आदमी खेदने के लिए आया है, दूसरी खेदी जाने के लिए। हम प्रौढ़ा पाठिकाओं से पूछते हैं, बातचीत किस तरह शुरू होनी चाहिए थी?

उचित जो भी हो, औचित्य के अनुसार कुछ भी नहीं हुआ। पहले दो आदमियों में एक ने भी मुँह नहीं खोला। अन्त में

प्रफुल्ल ने ज़रा-ज़रा मुस्कराकर गले में आँचल लपेटकर ब्रजेश्वर के पैरों पर सर रख कर प्रणाम किया।

ब्रजेश्वर बाप की तरह नहीं। उसने प्रणाम ग्रहण करके, अप्रतिभ होकर, बाँह पकड़कर प्रफुल्ल को उठाकर पलँग पर बैठाया, फिर आप भी पास बैठा।

प्रफुल्ल के मुख पर कुछ घूँघट था। उस काल की युवतियाँ इस काल की युवतियों की तरह नहीं थीं। ख़ैर, वह घूँघट, प्रफुल्ल को बाँह पकड़कर बैठाते समय, हट गया। ब्रजेश्वर ने देखा, प्रफुल्ल रो रही है। बिना समझे बूझे, जहाँ बड़ी डबडबाई आँखों के नीचे एक बूँद आँसू ढुलक रहा था, ब्रजेश्वर ने एकाएक चुम्बन किया।

जब ब्रजेश्वर इस घोर अश्लीलता-दोष से दूषित हो रहे थे—जब कमअक़्ल प्रफुल्ल मन ही मन सोच रही थी, शायद इस मुख-चुम्बन की तरह का पवित्र पुण्यमय कर्म इस संसार में कभी किसी ने नहीं किया, उस समय दरवाज़े से किसी ने मुँह बढ़ाया। मुख में शायद ज़रा-ज़रा मुस्किराहट थी। जिसका मुख था, उसके हाथ के गहनों की शायद कुछ झनक हुई थी, उसी से ब्रजेश्वर के कान उधर गये थे। ब्रजेश्वर ने उस तरफ़ देखा था। देखा, मुँह बड़ा सुन्दर है। भौंरे-से काले घुंघराले, झाँपटे से घिरा मुँह;—उस ज़माने में औरतें झाँपटा पहनती थीं;—उसके ऊपर ज़रा घूँघट खिंचा;—घूँघट के भीतर दो पद्म-पलाश आँखें और दो पतले रंगीन होंठ मधुर-मधुर हँस रहे हैं; ब्रजेश्वर ने देखा, मुँह सागर

का है। सागर ने पति को एक कुलुफ और कुञ्जी दिखाई। सागर निरी लड़की है, पति से ज़्यादा बातें नहीं करती। ब्रजेश्वर कुछ समझ नहीं सके। परन्तु समझने में बड़ी देर भी नहीं हुई। सागर बाहर से दरवाज़ा खींचकर ज़ञ्जीर चढ़ाकर, कुलुफ में कुञ्जी घुमा बन्द कर, धम-धम करके दौड़ती हुई भाग गई। ताला पड़ा, सुनकर ब्रजेश्वर "क्या करती हो सागर, क्या करती हो सागर" कहकर चिल्लाये। सागर किसी शब्द की तरफ़ कान न देकर धम-धम झम-झम करके दौड़ती हुई एकदम बूढ़ी दादी के बिस्तरे पर जाकर लेट गई।

दादी ने पूछा,—क्यों री सागर-बहू, क्या हुआ है? यहाँ जो आकर सोई?

सागर कुछ नहीं बोली।

दादी—तुझे ब्रज ने खेद दिया है क्या?

सा०—नहीं तो फिर तुम्हारी शरण में आती? आज तुम्हारे पास सोऊँगी।

दादी—अच्छा तो सो, सो। अभी फिर बुलायेगा देख। अहा, तेरे दादाजी ने इस तरह बारहों महीने तीसों दिन मुझे खेदा है। लेकिन फिर तभी बुलाया भी है। मैं और ग़ुस्सा करके जाती नहीं थी। लेकिन, औरत का दिल, भई, रह भी नहीं सकती थी। एक दिन हुआ क्या कि—

सा०—दादी, एक रूप की कहानी कहो न।

दादी—कौन कहूँ ? विहङ्गम-विहङ्गमीवाली कहूँ ? मगर क्या अकेली सुनेगी ? वह नई बहू कहाँ है ? उसे बुला न—दोनों सुनो।

सा०—वह कहाँ है, मैं अब खोज नहीं सकूँगी। मैं अकेली सुनूँगी। तुम कहो।

दादी ने सागर के पास लेटे-लेटे विहङ्गमवाली कहानी शुरू की। श्रीगणेश होते न होते सागर सो गई। दादी को यह ख़बर नहीं। वह दो-चार दण्ड तक कहानी चलाये गई। बाद को जब समझी कि श्रोत्री सो गई है, तब दुःखित चित्त से बीच में ही कहानी समाप्त कर दी।

दूसरे दिन सुबह होते न होते, सागर ने आकर कमरे का ताला खोल दिया। इसके बाद किसी से कुछ भी न कहकर दादीवाला टूटा चर्खा लेकर उस सोती हुई बूढ़ी के कानों के पास घनर-घनर करने लगी।

'कट्ट-झन्न', ताला और ज़ञ्जीर खोलने की आवाज़ हुई। प्रफुल्ल और ब्रजेश्वर ने सुना। प्रफुल्ल बैठी थी, उठकर खड़ी हो गई, कहा,—सागर ने ज़ञ्जीर खोली है, मैं चली। पत्नी कहकर स्वीकार करो या न करो, दासी कहकर याद रखना।

ब्रज—अभी न जाना। मैं एक दफ़ा पिताजी से कहकर देखूँगा।

प्र०—कहने से क्या उनके मन पर असर होगा ?

ब्रज—असर हो न हो, अपना काम मुझे करना होगा। बिना कारण के तुम्हें छोड़कर क्या मैं अधर्म में पड़ूँगा ?

प्र०—तुमने मुझे छोड़ा नहीं, ग्रहण किया है। मुझे एक दिन के लिए भी सेज में जगह दी, मेरे लिए वही बहुत है। तुमसे मैं भीख माँगती हूँ, मेरी जैसी दु:खिनी के लिए तुम पिताजी से कोई छेड़ न करो, इससे मुझे सुख नहीं होगा।

व्रज—कम से कम, वे जिससे तुम्हारा भोजन और वस्त्र भेजते रहें, वह मुझे करना होगा।

प्र०—उन्होंने मेरा त्याग किया है, मैं उनकी दी भीख नहीं लूँगी। अगर तुम्हारा अपना कुछ हो तो मैं तुमसे भीख लूँगी।

व्रज—मेरे कुछ भी नहीं, सिर्फ़ यह अँगूठी है। यह अँगूठी ले जाओ। इसकी क़ीमत से कुछ हद तक दु:ख दूर होगा। इसके बाद, मैं वही कोशिश करूँगा जिससे चार पैसा रोज़गार से कमा सकूँ। जिस तरह होगा, मैं तुम्हें भोजन-वस्त्र दूँगा।

यह कहकर व्रजेश्वर ने अपनी उँगली से हीरे की बेशक़ीमत अँगूठी निकाल कर प्रफुल्ल को दी। प्रफुल्ल ने अपनी उँगली में अँगूठी डालते डालते पूछा—अगर तुम मुझे भूल जाओ ?

व्रज—सबको भूलूँगा, तुम्हें कभी नहीं भूलूँगा।

प्र०—अगर इसके बाद पहचान न सको ?

व्रज—यह मुँह कभी नहीं भूलूँगा।

प्र०—मैं यह अँगूठी कभी नहीं बेचूँगी। बिना खाये मर जाऊँ, फिर भी कभी नहीं बेचूँगी। जब तुम मुझे पहचान न पाओगे, तब यही अँगूठी तुम्हें दिखाऊँगी। इस पर क्या लिखा है ?

व्रज—मेरा नाम खोदा हुआ है।

आँसुओं से सिक्त होकर दोनों एक-दूसरे से बिदा हुए।

प्रफुल्ल के नीचे आने पर सागर और नयन से भेंट हुई। ज़बाँद-राज़ नयन ने पूछा—दीदी, कल रात कहाँ सोई थीं?

प्र०—भई, कोई तीर्थ करती है तो वह बात अपने मुँह से नहीं कहती।

न०—यह क्या बात है?

सा०—तू समझती नहीं? कल ये मुझे निकालकर मेरे पलँग पर विष्णु का लक्ष्मी बनी थीं। और मर्द ने प्यार करके अँगूठी दी है।

सागर ने नयन को प्रफुल्ल की उँगली में व्रजेश्वर की अँगूठी दिखाई। देखकर नयनतारा के हाड़ तक जल गये। उसने कहा—दीदी, ससुर जी ने तुम्हारी बात का क्या जवाब दिया है, तुमने सुना है?

वह बात प्रफुल्ल को याद नहीं थी, उसे व्रजेश्वर का आदर मिला था। उसने पूछा—किस बात का जवाब?

न०—तुमने पूछा था, किस तरह खाओगी।

प्र०—इसका और क्या जवाब है?

न०—ससुर जी ने कहा है, चोरी-डाकेज़नी करके खाने को कहना।

"देखा जायगा" कहकर प्रफुल्ल बिदा हुई।

प्रफुल्ल ने और किसी से बातचीत नहीं की; सीधे खिड़की-दरवाज़े से बाहर आई। सागर पीछे पीछे गई। प्रफुल्ल ने उससे

कहा—भई, मैं आज चली। इस मकान में अब नहीं आऊँगी। तुम मायके जाओगी तो वहाँ तुमसे मुलाक़ात होगी।

सा०—तुम मेरा मायका जानती हो ?

प्र०—नहीं जानती तो मालूम कर लूँगी।

सा०—तुम मेरे मायके जाओगी ?

प्र०—मेरे लिए अब लाज कौन सी है ?

सा०—तुम्हारी माँ तमसे मिलने के लिए खड़ी हैं।

सचमुच ही बग़ीचे के दरवाज़े के पास प्रफुल्ल की माँ खड़ी थीं। सागर ने दिखा दिया, प्रफुल्ल माँ के पास गई।

सातवाँ परिच्छेद

प्रफुल्ल और उसकी माँ घर लौट आईं। आने-जाने में प्रफुल्ल की माँ को बड़ा शारीरिक कष्ट हुआ है, मानसिक कष्ट उससे भी अधिक। सब समय सब तकलीफें नहीं सह्य होतीं। लौटकर प्रफुल्ल की माँ बुखार में पड़ी। पहले ज्वर थोड़ा रहा, परन्तु बङ्गाली-घर की स्त्री, उस पर ब्राह्मण-घर की—उस पर विधवा, उन्होंने ज्वर को ज्वर ही न सोचा। दोनों वक़्त नहाती रहीं और मिलने पर भोजन भी पहले की तरह चलता रहा। पड़ोसी दया करके कभी कुछ दे देते थे, उसी से भोजन चलता रहा। क्रमशः ज्वर की वृद्धि हुई। अन्त में प्रफुल्ल की माँ ने चारपाई ली। उन दिनों उन सब गाँवों में चिकित्सा का ऐसा प्रचलन नहीं था। विधवाएँ प्रायः दवा नहीं खाती थीं; और प्रफुल्ल का कोई अपना ऐसा आदमी नहीं था जो वैद्य बुला लाता। वैद्य भी देश में न रहने के बराबर थे। ज्वर बढ़ा, सन्निपात हो गया, अन्त में प्रफुल्ल की माँ सब दुःखों से मुक्त हो गई।

जिन पड़ोसियों ने व्यर्थ का कलंक लगाया था, उन्होंने आकर प्रफुल्ल की माँ की क्रिया-काष्ठा की। बङ्गाली ऐसे समय शत्रुता नहीं रखते। बङ्गाली जाति में यह गुण है।

प्रफुल्ल अकेली पड़ी। टोले के पाँच आदमी आकर बोले—"तुम्हें चतुर्थी का श्राद्ध करना होगा।" प्रफुल्ल ने कहा—"इच्छा

है, पिण्डदान करूँ, लेकिन कहाँ क्या पाऊँगी ?" पड़ोसी बोले—"तुम्हें कुछ नहीं करना होगा, हम सब किये लेते हैं।" किसी ने कुछ नक़द दिया, किसी ने कुछ सामग्री दी; इस तरह श्राद्ध और ब्राह्मण-भोजन का उद्योग हुआ। पड़ोसियों ने अपने आप मिलकर कुल प्रबन्ध कर लिया।

एक पड़ोसी ने कहा—एक बात याद आ रही है। तुम्हारी माँ के श्राद्ध में तुम्हारे ससुर को न्यौता देना उचित है या नहीं ?

प्रफुल्ल ने कहा—कौन न्यौता देने के लिए जायगा ?

टोले के दो मातबर आदमी आगे हुए। सब कामों में वही अगुए होते हैं, उन्हें यही रोग है। प्रफुल्ल ने कहा—तुम्हीं लोगों ने हमारे कलंक की बात फैलाकर वह घर छुड़ाया है।

उन लोगों ने कहा—वह बात अब मन में न लाओ। वह बात हम सुधार लेंगे। तुम अब अनाथ बालिका हो, अब तुम्हारे साथ हमारी कोई तकरार नहीं।

प्रफुल्ल सम्मत हुई। दो आदमी हरवल्लभ को न्यौता देने के लिए गये। हरवल्लभ ने कहा—क्यों पण्डित जी, तुम्हीं लोगों ने समधिन को जाति से भ्रष्ट कहकर उसके दोने-पत्तल अलग किये थे, अब तुम्हीं बदलकर यह कह रहे हो ?

ब्राह्मणों ने कहा—बात यह है कि एक टोले में रहने पर ऐसे वितण्डावाद खड़े हो ही जाते हैं, लेकिन दर-अस्ल वह कोई बात ही नहीं थी।"

हरवल्लभ दुनियादार आदमी थे। सोचा, "यह सब दग़ाबाज़ी है। इन महात्माओं ने बाग्दी-बेटी से रुपये खाये हैं। अच्छा, बाग्दी-बेटी को रुपये कहाँ मिले?" अस्तु, हरवल्लभ ने निमन्त्रण की बात पर कान ही नहीं दिया। बल्कि उनका मन प्रफुल्ल की तरफ़ से और बेदर्द और नाराज़ हो गया।

ये सब बातें ब्रजेश्वर ने भी सुनीं। सोचा, एक दिन रात को छिपकर जाऊँगा और प्रफुल्ल को देखकर रातों रात लौट आऊँगा।

पड़ोसी विफल-मनोरथ होकर वापस आये। रीति के अनुसार माता का श्राद्ध करके पड़ोसियों की सहायता से प्रफुल्ल ने ब्राह्मण-भोजन कराया। ब्रजेश्वर जाने का मौक़ा खोजने लगा।

आठवाँ परिच्छेद

फूलमणि नाइन प्रफुल्ल के मकान के पास, कुछ दूर पर रहती है। माँ मरने के बाद से प्रफुल्ल घर में अकेली रहती है। प्रफुल्ल सुन्दरी है, युवती है, रात को अकेली रहती है, इसमें भय भी है, कलंक भी है। पास सोने के लिए रात को एक स्त्री चाहिए। फूलमणि से इसके लिए प्रफुल्ल ने अनुरोध किया था। फूलमणि विधवा है, उसके एक विधवा बहन के सिवा कोई नहीं। और वे दोनों बहनें प्रफुल्ल की अनुगत थीं। इसलिए प्रफुल्ल ने फूलमणि से अनुरोध किया था, और फूलमणि ने भी सहज भाव से स्वीकार कर लिया था। जिस दिन प्रफुल्ल की माँ मरी, उस दिन से प्रफुल्ल के घर में फूलमणि रोज शाम के बाद आकर सोती है।

लेकिन फूलमणि किस चरित्र की स्त्री है, यह लड़की प्रफुल्ल विशेष रूप से नहीं जानती थी। फूलमणि उम्र में प्रफुल्ल से दस साल बड़ी है। देखने-सुनने में भी बुरी नहीं, पहनाव-उढ़ाव में विशेषता रखती है। एक तो साधारण जाति की स्त्री, उस पर बाल-विधवा, चरित्र वह बहुत पाक नहीं रख सकी। गाँव के जमींदार पराण चौधरी थे। उनका एक गुमाश्ता दुर्लभ चक्रवर्ती उस गाँव में कभी-कभी आकर कचहरी लगाता था। लोग कहते थे, फूलमणि दुर्लभ की विशेष रूप से कृपापात्री है, या दुर्लभ उसका कृपापात्र है। ये सब बातें प्रफुल्ल ने कभी सुनी न हों, ऐसी बात नहीं, लेकिन

करे क्या, दूसरी कोई अपना घर-बार छोड़कर प्रफुल्ल के यहाँ आकर सोना नहीं चाहती। ख़ास बात यह, प्रफुल्ल ने सोचा कि वह बुरी हो, मैं अगर बुरी नहीं तो मेरा कोई क्या बुरा करेगा ?

अस्तु, फूलमणि दो-चार रात आकर प्रफुल्ल के घर में सोई। श्राद्ध के दूसरे दिन फूलमणि कुछ देर करके आ रही थी। राह में एक आम के पेड़ की बग़ल में एक वन है, आते समय फूलमणि उस वन में घुसी। उस वन के भीतर एक पुरुष खड़ा था। कहना नहीं होगा कि वह वही दुर्लभचन्द्र है।

चक्रवर्ती महाशय ने, अभिसार में आई, पान से होंठ रचे हुए, लाल किनारी की साड़ी पहने, मुस्किराहट से खिली हुई फूलमणि को देखकर कहा—क्यों, आज ?

फूलमणि ने कहा—हाँ, आज ही ठीक है। तुम आधी रात के वक़्त पालकी लेकर आना। दरवाजे पर उँगली मारना, मैं दरवाज़ा खोल दूँगी। लेकिन देखना, शोर-गुल न हो।

दुर्लभ—इसके लिए न डरो। लेकिन वह तो शोर न मचायेगी ?

फूलमणि—इसकी एक व्यवस्था करनी होगी। मैं आहिस्ते-आहिस्ते दरवाज़ा खोलूँगी, तुम आहिस्ते-आहिस्ते, उसके सोते रहते-रहते उसका मुँह कपड़े से चाँपकर बाँध डालना। फिर किसके बाप की मजाल जो चिल्लाये ?

दुर्लभ—लेकिन इस तरह ज़बरस्ती ले जाने पर कितने दिन रहेगी ?

फूल०—एक दफ़ा ले जाने पर ही काम बन जायगा। जिसके तीनों कुलों में कोई नहीं, जो अन्न की कङ्गाल है, उसे खाने को मिलेगा, कपड़े मिलेंगे, गहने मिलेंगे, रुपया मिलेगा, प्रेम मिलेगा, फिर भी वह नहीं रहेगी? वह भार मेरा रहा। लेकिन मुझे रुपये और गहने का हिस्सा मिले, याद रहे।

इस तरह की बात-चीत खत्म होने पर दुर्लभ अपनी जगह गया, फूलमणि प्रफुल्ल के पास गई। प्रफुल्ल इस सर्वनाश की बात कुछ भी नहीं मालूम कर सकी। वह माँ की बातें सोचती हुई लेटी। माँ के लिए जिस तरह रोज़ रोती है, रोई। रोकर जिस तरह रोज़ सोती है, सोई। आधी रात को दुर्लभ ने दरवाज़े पर उँगली की खटक दी। फूलमणि ने दरवाज़ा खोल दिया। दुर्लभ ने प्रफुल्ल का मुँह बाँधकर हाथाहाथी उठाकर उसे पालकी पर रक्खा। कहार चुपचाप उसे ज़मींदार पराण बाबू के विहार-मन्दिर की ओर ले चले। कहना नहीं होगा, फूलमणि साथ-साथ चली।

इसके कुछ समय बाद ब्रजेश्वर उस शून्य गृह में प्रफुल्ल की खोज में आकर हाज़िर हुआ। ब्रजेश्वर सबसे छिपकर रात को भग आया है। हाय! कहीं कोई नहीं।

प्रफुल्ल को लेकर कहार चुपचाप चले, कह चुके हैं। कोई यह न सोचे, यह भ्रम या प्रमाद है। कहारों का स्वभाव है पालकी ढोते वक्त बोलना—हाँकें भरना, मगर हाँक भरने की उन्हें मुमानियत थी। आवाज़ उठने पर भङ्गड़ हो सकता था। इसके अलावा एक और बात थी। दादी की ज़बानी मालूम किया जा चुका है,

डाकुओं का बड़ा डर है। दरअस्ल डाकुओं का इतना प्रचण्ड भय कभी किसी देश में हुआ था, इसमें सन्देह है। तब देश में अराजकता थी। मुसलमानों का राज्य हटा, अँगरेज़ों का अच्छी तरह अभी नहीं जमा, जम रहा है। इस पर कुछ साल हुए छिहत्तर वाला मन्वन्तर देश का सत्यानाश कर गया है। इस पर भी देवीसिंह का इजारा। पृथ्वी के दूसरे पार वेस्टमिनिस्टर हाल में खड़े होकर एडमंड बर्क देवीसिंह को अमर कर गये हैं। पर्वत से निकलनेवाली आग की शिखाओं जैसे ज्वालामय वाक्यों के प्रवाह से बर्क ने देवीसिंह के न सहे जानेवाले अत्याचार को अनन्त काल के पास भेजा है। उनके मुख से वह दैववाणी-जैसी वाक्य-परम्परा सुनकर शोक से अनेक स्त्रियाँ मूर्च्छित हो गई थीं,—आज भी सौ साल बाद वह वक्तृता पढ़ने पर शरीर रोमाञ्चित और हृदय उन्मत्त होता है। उस भयंकर अत्याचार ने वरेन्द्रभूमि को डुबा दिया था। बहुतों को भोजन ही नहीं मिलता था, ऐसा नहीं; घर में रहने को भी नहीं मिलता था। जिनके खाने को नहीं था, वे दूसरे का छीनकर खाते थे। इसी लिए इस समय गाँव-गाँव में चोर और डाकुओं के दल थे। किसकी मजाल थी जो इन्हें दबाता? गुडलैड साहब रंगपुर के पहले कलक्टर हैं। फ़ौजदारी उन्हीं के ज़िम्मे थी। वे डाकू पकड़ने के लिए दल के दल सिपाही भेजने लगे। सिपाही कुछ कर नहीं सके।

दुर्लभ डर रहा था। वह डाका डालकर प्रफुल्ल को लिये जा रहा है, कोई दूसरा डाकू इस पर डाका न डाले। पालकी देखकर

डाकू का आना सम्भव है इसी डर से कहार चुप हैं। शोर-गुल के डर से साथ दूसरे आदमी नहीं लिये गये। सिर्फ दुर्लभ है और फूल-मणि। इस तरह डरते-डरते इन लोगों ने चार कोस का रास्ता तय किया।

इसके बाद बहुत बड़ा जङ्गल शुरू हुआ। कहारों ने डरकर देखा, दो आदमी सामने आ रहे हैं। रात का समय, तारों के उजाले से रास्ता भर देखा जा रहा है। लिहाज़ा आदमियों के आकार अस्पष्ट दिखे। कहारों ने देखा, जैसे जान लेनेवाले यम की जैसी दो मूर्तियाँ आ रही हैं। एक कहार ने दूसरे से कहा, "दोनों आदमियों पर शक होता है।" दूसरे ने एक तीसरे से कहा—रात को जब घूम रहे हैं तब भले आदमी थोड़े ही हैं?

तीसरे ने कहा—दोनों बड़े तगड़े जवान हैं।

चौथे ने कहा—हाथ में लाठी लिये हैं न?

पहला—चक्रवर्ती महाशय क्या कहते हैं? अब तो नहीं बढ़ा जाता। डाकुओं के हाथ में जान जायगी?

चक्रवर्ती महाशय ने कहा—हाँ, विपत तो बड़ी देख रहा हूँ! जो सोचा था, वही हुआ।

ऐसे समय जो दो आदमी आ रहे थे उन्होंने रास्ते पर आदमी देखकर हाँक लगाई—कौन हो रे?

कहार उसी वक्त पालकी कन्धे से फेंककर "अरे बाप रे" कहकर एक साथ जङ्गल के भीतर भग गये। दुर्लभ चक्रवर्ती महाशय ने भी वही रास्ता पकड़ा। "मुझे छोड़कर कहाँ जाते हो?" कहकर फूलमणि भी उनके पीछे-पीछे दौड़ी।

जो दो आदमी आ रहे थे—जो इन दस आदमियों के भय के कारण थे—वे सिर्फ़ राही थे। वे दोनों हिन्दुस्तानी थे, दिनाजपुर में सरकारी नौकरी की कोशिश में जा रहे थे। रात बीती जानकर, सुबह-सुबह रास्ता चलना शुरू किया था। कहार भग गये देखकर वे एक दफ़ा खूब हँसे। इसके बाद अपने रास्ते चले गये। परन्तु कहार, फूलमणि और चक्रवर्ती महाशय ने फिर पीछे फिरकर नहीं देखा।

प्रफुल्ल ने पालकी पर जाते ही मुँह का बन्धना अपने हाथों खोल डाला था। आधीरात को चिल्लाने से क्या होगा सोचकर वह चिल्लाई नहीं। चिल्लाहट सुनने पर भी कौन डाकुओं के सामने आयेगा? पहले भय से प्रफुल्ल कुछ अपने को भूल सी गई थी, मगर अब उसकी समझ में साफ़ तौर से आ गया कि हिम्मत किये बग़ैर छुटकारे का दूसरा उपाय नहीं होगा। जब कहार पालकी डालकर भागे, तब प्रफुल्ल समझी, यह नई दूसरी आफ़त है। धीरे-धीरे उसने पालकी का दरवाज़ा खोला। थोड़ा सा मुँह बढ़ा कर देखा, दो आदमी आ रहे हैं। तब प्रफुल्ल ने धीरे-धीरे दरवाज़ा बन्द कर लिया। जो थोड़ी सी दराज़ रही, उससे प्रफुल्ल ने देखा, दोनों आदमी चले गये। तब प्रफुल्ल पालकी से बाहर निकली। देखा, कहीं कोई नहीं।

प्रफुल्ल ने सोचा, जो लोग मुझे चोराचोरी से लिये जा रहे थे, वे अवश्य लौटेंगे; इसलिए अगर रास्ता-रास्ता चलूँगी, तो पकड़ जा सकती हूँ। इससे अभी जङ्गल में छिपी रहूँ। इसके बाद, दिन चढ़ने पर, जो होगा, करूँगी।

यह सोचकर प्रफुल्ल जङ्गल के भीतर पैठी। जिस ओर कहार भागे थे, भाग्य से उस ओर नहीं गई। इसलिए किसी से उसकी भेट नहीं हुई। प्रफुल्ल जङ्गल के भीतर स्थिर भाव से खड़ी रही। कुछ देर बाद ही प्रभात हुआ।

प्रभात होने पर प्रफुल्ल वन के भीतर इधर-उधर घूमने लगी। रास्ते पर निकलने की अब भी हिम्मत नहीं होती। देखा, एक जगह एक अस्पष्ट पगडंडी वन के भीतर की तरफ गई है। जब पगडंडी का निशान मिलता है तब ज़रूर इधर मनुष्य का वास है। प्रफुल्ल उसी पगडंडी से चली। घर लौटने से डरी, कहीं फिर डाकू उसे घर से पकड़ ले जायँ। इससे बाघ और रीछ खा जायँ, वह भी अच्छा है, फिर डाकुओं के हाथ न पड़ना हो।

पगडंडी पकड़े हुए प्रफुल्ल बहुत दूर तक चली गई। दस दण्ड दिन चढ़ आया, फिर भी गाँव नहीं मिला। अन्त में रास्ते की रेखा विलुप्त हो गई। आगे उसे रास्ता नहीं मिला। लेकिन दो-एक पुरानी ईंटें देखने को मिलीं। उसे भरोसा हुआ कि अवश्य पास बस्ती होगी।

चलते-चलते ईंटों की संख्या बढ़ने लगी। जङ्गल अगम हो गया। अन्त में प्रफुल्ल ने देखा, घने जङ्गल के भीतर एक बड़ी इमारत के खँडहर मौजूद हैं। प्रफुल्ल ईंटों के धुस्स पर चढ़कर चारों ओर देखने लगी। देखा, इस समय भी दो-चार कमरे ढहने से बच रहे हैं। सोचा, यहाँ आदमी रहे तो रह भी सकता है। प्रफुल्ल उन कमरों के भीतर घुसने को चली। देखा, सब कमरों

के दरवाजे खुले हुए हैं,—आदमी नहीं फिर भी आदमी के रहने के निशान कुछ-कुछ है। कुछ देर बाद प्रफुल्ल ने एक बूढ़े आदमी की कराह सुनी। आवाज के सहारे वह एक कक्ष के भीतर गई। देखा, वहाँ एक बूढ़ा पड़ा हुआ कराह रहा है। बूढ़े की देह सूखी हुई, होंठ मुरझाये हुए, आँखें गढ़े में गई हुईं, साँस घनी चलती हुई। प्रफुल्ल समझी, इसकी मौत निकट है। प्रफुल्ल उसके बिस्तर के पास जाकर खड़ी हुई।

बूढ़े ने प्रायः सूखे कण्ठ से पूछा—माँ, तुम कौन हो? क्या तुम कोई देवता हो, मृत्यु के समय मेरे उद्धार के लिए आई?

प्रफुल्ल ने कहा—मैं अनाथ हूँ। राह भूलकर यहाँ आई हूँ। देखती हूँ, तुम भी अनाथ हो, क्या तुम्हारा कोई उपकार कर सकती हूँ?

बूढ़े ने कहा—इस समय बहुत उपकार कर सकती हो। जय नन्द के लाल! इस समय आदमी का मुँह देखने को मिला। मारे प्यास के जान निकलती है, थोड़ा सा पानी दो।

प्रफुल्ल ने देखा, बूढ़े के घर में घड़ा है, घड़े में पानी है, पीने का बरतन है। सिर्फ़ पिलानेवाला कोई नहीं। प्रफुल्ल ने पानी ढाल-कर बूढ़े को पिलाया।

पानी पीकर बूढ़ा कुछ स्थिर हुआ। इस जङ्गल में मरते हुए बूढ़े को अकेला, इस हालत में देखकर प्रफुल्ल को बड़ा कौतूहल हुआ। लेकिन बूढ़ा तब बहुत बातें नहीं कर सकता था। फलतः

प्रफुल्ल उसका विशेष परिचय नहीं पा सकी। जो थोड़ी सी बात-चीत बूढ़े ने की, उसका मर्म यह है :—

बूढ़ा वैष्णव है। उसके कोई नहीं, केवल एक वैष्णवी थी। वैष्णवी बूढ़े को मुमूर्षु देखकर उसकी द्रव्य-सामग्री जो कुछ थी, वह लेकर भग गई है। बूढ़ा वैष्णव है, उसकी दाह-क्रिया नहीं होगी, उसकी समाधि हो यह इच्छा है। बूढ़े की सलाह के अनुसार उस इमारत के आँगन में वैष्णवी एक समाधि खोदकर तैयार कर गई है। मुमकिन है, साबर और फावड़ा वहीं पड़े हों। बूढ़े ने प्रफुल्ल से यह भीख माँगी—मैं मरूँ तो उस गढ़े में मुझे डालकर मिट्टी से तोप देना।

प्रफुल्ल ने स्वीकार किया। इसके बाद बूढ़ा कहने लगा—मेरा कुछ धन गाड़ा हुआ है। वैष्णवी को यह ख़बर नहीं थी। नहीं तो बिना लिये न भागती। वह धन किसी को बिना दे गये मेरी जान नहीं निकलेगी। अगर किसी को बिना दिये मरूँ तो यक्ष होकर वह धन घेरकर घूमूँगा—मेरी सुगति न होगी। वैष्णवी को वह धन दूँगा, सोचा था। लेकिन वह तो भाग गई। और किस मनुष्य से मुलाक़ात होगी? तुम्हें ही इसलिए वह धन दिये जा रहा हूँ। मेरे बिस्तरे के नीचे एक चौकोर तख्ता बिछा हुआ है। वह तख्ता उठाना। एक सुरङ्ग मिलेगी। लगातार सीढ़ियाँ हैं। उनसे उतर जाना। डर की बात नहीं। दिया ले जाना। नीचे मिट्टी के अन्दर ऐसा ही एक कमरा मिलेगा। उस कमरे की वायव्य दिशा में खोजना, धन मिलेगा।

प्रफुल्ल बूढ़े की सेवा में लगी। बूढ़े ने कहा—इस मकान में ढोरों का घर है। उसमें गौएँ हैं। वहाँ से अगर दूध दुह ला सको तो थोड़ा सा मुझे दो, थोड़ा तुम पीयो।

प्रफुल्ल ने वैसा ही किया। दूध लाने के समय देख आई, समाधि तैयार की गई है, वहाँ साबर और फावड़ा पड़े हैं।

दिन ढलते बूढ़े का प्राणान्त हो गया। प्रफुल्ल ने उसे उठाया। बूढ़ा शीर्ण हो गया था, इसलिए हल्का था; प्रफुल्ल काफी सबल थी। उसे ले जाकर उस गढ़े में लिटाया, ऊपर से मिट्टी डाल दी। बाद को पास के कुएं में नहाकर भींगा वस्त्र आधा पहन कर आधा धूप में सुखा लिया। इसके बाद साबर और फावड़ा लेकर बूढ़े के धन की तलाश में चली। बूढ़ा उसे धन दे गया है, इसलिए लेने में कोई बाधा है, उसके मन में न आया। वह भी दीन-दुःखिनी है।

नवाँ परिच्छेद

बूढ़े को गढ़े में रखने से पहले प्रफुल्ल ने उसका बिस्तरा उठाकर वन में फेंक दिया था। देखा था, सचमुच ही उसके बिस्तरे के नीचे एक चौकोर तख्ता है। लम्बाई और चौड़ाई में तीन हाथ होगा। अब साबर लेकर उसकी नोक से तख्ता उठाया—अँधेरा गढ़ा देख पड़ा। क्रमशः अँधेरे में प्रफुल्ल ने देखा, सही सही, उतरने की एक सीढ़ी है।

जङ्गल में लकड़ी की कमी नहीं। आँगन में कुछ चैले पड़े थे। उन्हें ले आकर प्रफुल्ल ने गढ़े में डाला। इसके बाद खोजने लगी—चकमक पत्थर है या नहीं। बूढ़ा अवश्य ही तम्बाकू पीता था। सर वाल्टर रैली के आविष्कार के बाद कौन बूढ़ा तम्बाकू बिना यह कमक़ीमत, नश्वर, नीरस, असह जीवन पार कर सका है?—मैं भी (ग्रन्थकार) मुक्त कण्ठ से कहता हूँ कि अगर कोई ऐसा बूढ़ा था तो उसका मरना अच्छा नहीं हुआ—उसे और कुछ दिन जीता रहकर इस दुनिया की न सही जानेवाली तकलीफ़ें उठाना ही उचित था। खोजते-खोजते प्रफुल्ल को चकमक-पत्थर, सलीता, दियासलाई, सब कुछ मिल गया। तब प्रफुल्ल गोशाला से बटोरकर बिचाली ले आई। चकमक-पत्थर से आग निकाल बिचाली जलाकर उस सँकरी सीढ़ी से नीचे उतरी। साबर और फावड़ा पहले ही नीचे डाल दिये थे। देखा, एक सुन्दर कमरा है। उसका वायव्य कोना

ठीक किया। फिर जो चैल फेंके थे, उन्हें बिचाली की आग से जलाया। ऊपर के खुले रास्ते से धुआं निकलता रहा। कमरे में उजाला हुआ। ठिकाने पर प्रफुल्ल खोदने लगी।

खोदते-खोदते एक जगह ठनकार हुई। प्रफुल्ल की देह रोमाञ्चित हो गई—समझी, लोटे या घड़े में साबर लगा है। मगर कहाँ से किसका धन यहाँ आया, इसका परिचय पहले दूँगा।

बूढ़े का नाम है कृष्णगोविन्द दास। कृष्णगोविन्द कायस्थ वंश के थे। भली तरह अपने दिन पार करते थे। लेकिन उम्र बढ़ने पर एक सुन्दरी वैष्णवी के हाथ पड़कर, तिलक और खँभड़ी में चित्त बेचकर, भेष लेकर वैष्णवी के साथ श्री वृन्दावन की यात्रा की। वृन्दावन पहुँचकर कृष्णगोविन्द की वैष्णवी देवी ने वहाँ के वैष्णवों के, जयदेव के मधुर गीत सुनकर, श्रीमद्भागवत में उनका पाण्डित्य और आठों गाँठ सुन्दर गढ़न देखकर उनके चरणारविन्दों की सेवा करते हुए पुण्य-सञ्चय करने की ओर मन लगाया। यह देखकर कृष्णगोविन्द वृन्दावन छोड़कर वैष्णवी को लेकर बङ्गाल लौट आये। तब कृष्णगोविन्द गरीब थे। काम की तलाश करते हुए मुर्शिदाबाद पहुँचे। वहाँ उन्हें एक नौकरी मिली। परन्तु, उनकी वैष्णवी बड़ी सुन्दरी है, नवाब के महल में यह खबर पहुँची; एक हबशी खोजा वैष्णवी को बेगम बनाने की गरज से उनके घर आने-जाने लगा। वैष्णवी लोभ में पड़कर राजी हुई। फिर बेहाथ होने की नौबत देखकर कृष्णगोविन्द बाबा अपनी वैष्णवी को लेकर वहाँ से भाग खड़े हुए। लेकिन जायँ कहाँ?

कृष्णगोविन्द ने सोचा, यह अमूल्य धन लेकर बस्ती में रहना अनुचित है। न जाने कौन किस दिन छीन लेगा। तब बाबाजी वैष्णवी को पद्मा पार कराकर एकान्त स्थान की खोज करने लगे। घूमते फिरते इस टूटी अट्टालिका में आकर उपस्थित हुए। देखा, उस अमूल्य रत्न को लोक-लोचनों से छिपा रखने की सही-सही जगह है। यहाँ यम के सिवा दूसरे किसी के लिए खोज रखने की सम्भावना नहीं। इस तरह वे वहाँ रहने लगे। बाबा हफ़्ते-हफ़्ते बाज़ार सौदा करने जाते थे, वैष्णवी को कहीं भी निकलने नहीं देते थे।

एक दिन कृष्णगोविन्द नीचे के एक कमरे में चूल्हा खोद रहे थे। मिट्टी खोदते-खोदते पुराने ज़माने की—उस वक्त के लिए भी पुराने ज़माने की—एक मोहर पाई। कृष्णगोविन्द ने वहाँ और भी खोदा। एक हण्डी रुपये पाये। ये रुपये न मिलते तो कृष्ण-गोविन्द के दिन कटना मुश्किल हो जाता। अब मज़े में दिन पार करने लगे। परन्तु कृष्णगोविन्द को एक नई ख्वाहिश हुई। रुपये मिलने पर याद आया, इस तरह पुराने मकानों में बहुतों ने बहुत सा धन मिट्टी में गड़ा पाया है। कृष्णगोविन्द को दृढ़ विश्वास हुआ, यहाँ और भी रुपया है। तभी से कृष्णगोविन्द रोज़ गड़े धन की खोज करने लगे। खोजते-खोजते बहुत सी सुरङ्गें, मिट्टी के नीचे कितनी ही चोर-कोठरियाँ निकली देखीं। कृष्णगोविन्द वायु-विकार के आदमी की तरह उन सब जगहों में तलाश करने लगे। लेकिन कुछ पाया नहीं। एक साल इस तरह चक्कर काट-

काटकर कृष्णगोविन्द कुछ शान्त हुए। लेकिन फिर भी बीच-बीच में नीचे की चोर-कोठरी में जाकर खोज करते थे। एक दिन देखा, एक अँधेरे कमरे के एक कोने में कुछ चमक रहा है। दौड़कर उसे उठा लिया,—देखा, मोहर है। चूहों ने मिट्टी निकाली थी, उसी मिट्टी के साथ वह निकली थी।

कृष्णगोविन्द ने उस समय कुछ भी नहीं किया; बाज़ार के दिन की प्रतीक्षा करने लगा। इस दफ़ा बाज़ार के दिन वैष्णवी से कहा, "मेरी तबियत बहुत बिगड़ी है, तुम बाज़ार करने जाओ।" वैष्णवी सबेरे बाज़ार करने गई। बाबाजी ने निश्चय किया, वैष्णवी को एक दिन की छुट्टी मिली है, जल्दी नहीं लौटेगी। कृष्ण-गोविन्द उसी अवकाश में उस कोने में खोदने लगे। वहाँ बीस-घड़ा धन निकला।

पहले उत्तर-बङ्गाल में नीलध्वज वंश के बड़े पराक्रमी राजा राज्य करते थे। उस वंश के अन्तिम राजा नीलाम्बरदेव हैं। नीलाम्बर की बहुत सी राजधानियाँ थीं। अनेक नगरों में अनेक राजभवन थे। यह भी एक राजभवन था। यहाँ साल में दो-एक हफ़्ते रहते थे। गौड़ के बादशाह ने एक समय उत्तर बङ्गाल जीतने की इच्छा से नीलाम्बर के विरुद्ध सेना भेजी। नीलाम्बर ने सोचा, अगर पठानों ने हमला करके राजधानी पर अधिकार कर लिया, तो पूर्व-पुरुषों की संचित की हुई धनराशि उनके हाथ चली जायगी। पहले से सावधान हो जाना अच्छा है। यह विचार कर युद्ध के पहले नीलाम्बर राजभाण्डार का कुल धन बड़ी

सावधानी से यहां ल आये और उसे अपने हाथ से मिट्टी में गाड़कर रक्खा। दूसरे किसी को मालूम नहीं हुआ कि धन कहाँ रहा। लड़ाई में नीलाम्बर कैद हुए। पठानों के सेनापति ने उनका गौड़ को चालान किया। इसके बाद किसी ने मनुष्य-लोक में उन्हें फिर नहीं देखा। उनका परिणाम क्या हुआ, कोई नहीं जानता। वह फिर कभी अपने देश नहीं लौटे। तभी से उनकी धन-राशि वहाँ गड़ी रह गई। वह धनराशि कृष्णगोविन्द को मिली। सोना, हीरा, मोती, प्रवाल असङ्ख्य—अगणय थे। कोई निश्चय नहीं कर सकता, उनकी क्या क़ीमत हो सकती थी। कृष्णगोविन्द ने ऐसा बीस बड़ा धन पाया।

कृष्णगोविन्द ने घड़ों को सावधानी से गाड़ रक्खा। एक दिन के लिए भी वैष्णवी को इस धन की कुछ बात मालूम नहीं होने दी। कृष्णगोविन्द इतना कञ्जूस था कि इस धन से एक मोहर लेकर भी कभी खर्च नहीं किया। वह इस धन को अपनी देह के खून की तरह समझता था। उन्हीं हण्डीवाल रुपयों से बड़ी कशमकश से दिन चलाता रहा। वह धन अब प्रफुल्ल को मिला। घड़ों को अच्छी तरह गाड़कर प्रफुल्ल लौटकर लेटी। तमाम दिन की मिहनत के बाद उस बिचाली के बिछौने पर जल्दी ही उसकी आँख लग गई।

———

दसवाँ परिच्छेद

अब जरा फूलमणि की बात कहूँ। फूलमणि नाइन हिरनी-जैसी है; तेज कदम उठानेवाले जीवों को चुन चुनकर उसने आत्म-समर्पण किया है। डाकुओं के डर से दुर्लभचन्द्र आगे आगे भागे, पीछे पीछे फूलमणि दौड़ती चली; परन्तु दुर्लभ भागने की ओर ऐसे रूखे थे कि वे पीछे दौड़ती आती हुई प्रणयिनी के लिए बिल-कुल दुर्लभ हो रहे थे। फूलमणि जितना ही बुलाती थी—"ओ हो! खड़े हो जाओ! मुझे पीछे छोड़कर मत जाओ!" दुर्लभ-चन्द्र उतना ही चिल्लाते थे—"अरे बाप रे! वह आ गया रे!" काँटों के वन के भीतर से उछलकर नाले पार करते हुए, कीचड़ माड़ते हुए, ऊर्ध्वश्वास से दुर्लभ भागते गये। हाय, काँछ खुल गई है, चादर कँटीली झाड़ी से उलझकर नुचकर उनकी वीरता की पताका के तौर पर हवा में उड़ रही है। तब फूलमणि सुन्दरी ने ऊँची आवाज लगाई—ओ जहन्नुमी आदमी, अरे किसी औरत को भुलावा देकर साथ लाकर क्या इसी तरह डाकुओं के हाथ सौंप जाया जाता है?" सुनकर दुर्लभचन्द्र ने सोचा, तो जरूर इसे डाकुओं ने पकड़ा है। इसलिए दुर्लभचन्द्र बिना कोई जवाब दिये और भी तेजी से कदम उठाने लगे। फूलमणि ने पुकारा—"ओ जहन्नुमी—ओ गाजमारा—ओ बाभ के बेटे—ओ दाढ़ीजारे—ओ लफंगे!" तब तक दुर्लभ निगाह

से ओझल हो गये। लिहाज़ा फूलमणि ने भी गलेबाज़ी बन्द कर दी, रोना शुरू किया। रोती हुई दुर्लभ के माँ-बाप पर तरह-तरह के रंग चढ़ाने लगी।

इधर फूलमणि ने देखा, डाकू कहीं कोई नहीं आया। कुछ देर तक खड़ी सोचती रही, फिर रोना बन्द किया। अंत में देखा, न डाकू आ रहे हैं, न दुर्लभचन्द्र देख पड़ते हैं। तब जङ्गल से निकलने का रास्ता खोजने लगी। उस जैसी चतुर स्त्री के लिए रास्ता निकाल लेना बड़ी मुश्किल बात नहीं हुई। सहज ही बाहर निकलकर वह आम रास्ते पर खड़ी हुई। कहीं कोई नहीं, देखकर वह घर की तरफ़ चली। उस समय दुर्लभ पर बड़ा ग़ुस्सा था।

काफ़ी दिन चढ़ आने पर फूलमणि घर पहुँची। देखा, उसकी बहन अलकमणि घर में नहीं है, नहाने गई है। फूलमणि किसी से कुछ न कहकर द्वार बन्द कर लेट रही। रात को सोई नहीं थी, लेटने के साथ ही सो गई।

उसकी दीदी लौटकर आई तो उसे जगाया, पूछा—क्यों री, तू अब आई?

फूलमणि ने कहा—क्यों, मैं कहाँ गई थी?

अलकमणि—और कहाँ जायगी? बाम्हनों के यहाँ सोने गई थी, लेकिन इतना दिन चढ़े तक नहीं आई इसी लिए पूछ रही हूँ।

फूल०—तूने आँख से नाता तोड़ लिया है तो इसके लिए क्या किया जाय? सुबह तेरे सामने से तो आकर सोई। देखा नहीं?

अलकमणि ने कहा—यह क्या बात है बहन? मैं सबेरे से तीन दफ़ा बाम्हनों के यहाँ जाकर तुझे खोज आई। पर तुझे भी नहीं देखा, किसी और को भी नहीं। क्यों री, प्रफुल्ल आज कहाँ गई है?

फूल०—(काँपकर) चुप रह! दीदी, चुप! वह बात मुँह में न लाना।

अलक०—(डरी हुई) क्यों, क्या हुआ है?

फूल०—वह बात कहने की नहीं।

अलक०—क्यों री?

फूल०—हम लोग छोटे आदमी हैं, हमें देवता-बाम्हनों की बात से काम क्या, बहन?

अलक०—वह क्या? प्रफुल्ल ने क्या किया है?

फूल०—प्रफुल्ल क्या अब है?

अलक०—(फिर डरकर) यह क्या? क्या कहती है तू?

फूल०—(बहुत ही धीमी आवाज़ में) किसी से कहना मत, कल उसकी माँ आकर उसे ले गई है।

अलक०—ऐं?

अलकमणि की देह थर-थर काँपने लगी। तब फूलमणि ने एक कपोल-कल्पना की नींव डाली। फूलमणि ने प्रफुल्ल के बिस्तरे पर रात के तीसरे पहर उसकी माँ को बैठी हुई देखा था। कुछ ही देर बाद कमरे के भीतर एक बड़ा तूफ़ान उठा—इसके बाद फिर कहीं कोई नहीं। फूलमणि मूर्च्छित होकर पड़ी रही—जमोगा लग

गया आदि आदि। फूलमणि ने उपन्यास के उपसंहार के वक़्त दीदी को ख़ास तौर से सावधान कर दिया—ये सब बातें किसी से कहना मत। देखना, तुझे मेरे सर की क़सम है।

दीदी ने कहा—"नहीं दीदी, ये बातें भी कही जाती हैं?" परन्तु ये दीदी महोदया चावल धोने के बहाने उसी वक़्त धूँची हाथ में लेकर गाँव घूमने निकलीं, और घर-घर यह उपन्यास अलंकार के साथ व्याख्या करके समझाते हुए सबको सावधान कर दिया कि "देखो यह बात अपने में ही रखना।" लिहाज़ा यह जल्द से जल्द प्रचार पाकर दूसरे रूप में बदलकर प्रफुल्ल की ससुराल पहुँचा। दूसरा रूप कैसा हुआ, बाद को कहूँगा।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

सुबह को उठकर प्रफुल्ल ने सोचा कि अब क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? यह घना जङ्गल तो रहने की जगह नहीं। यहाँ अकेली रहूँ किस तरह ? जाऊँ भी कहाँ ? घर लौट जाऊँ ? फिर डाकू पकड़ ले जायँगे। और कहीं भी जाऊँ तो यह धन किस तरह ले जाऊँगी ? आदमियों से ढोआकर ले जाने पर बात खुल जायगी, चोर-डाकू छीन लेंगे। आदमी भी कहाँ मिलेंगे ? अगर कोई मिला तो उसी पर क्या विश्वास ? मुझे मारकर धन छीन लेते कितनी देर लगेगी ? इस धन-राशि का लोभ कौन रोक सकता है ?

प्रफुल्ल बड़ी देर तक सोचती रही। अन्त में यह सिद्धान्त हुआ, कि क़िस्मत में जो भी हो, ग़रीबी की तकलीफें अब और नहीं सह सकूँगी। यहीं रहूँगी। मेरे लिए दुर्गापुर और इस जङ्गल में भेद क्या है ? वहाँ भी मुझे डाकू पकड़े लिये जा रहे थे; न होगा, यहाँ भी वैसा ही करेंगे।

इस तरह मन में निश्चय करके प्रफुल्ल घर के काम में लगी। तमाम घर बुहारकर साफ़ किया। गौओं को खोला। अन्त में भोजन पकाने चली। लेकिन पकाये क्या ? हंडी, लकड़ी, दाल, चावल, कुछ नहीं। प्रफुल्ल एक भोहर लेकर हाट की खोज में निकली। प्रफुल्ल की हिम्मत हर एक में नहीं मिलती, इसका काफ़ी परिचय दिया जा चुका है।

इस जङ्गल में हाट कहाँ ? प्रफुल्ल ने सोचा, खोज लूँगी। जङ्गल में पगडंडी हैं, पहले ही कहा जा चुका है। प्रफुल्ल वही पगडण्डी पकड़कर चली।

चलते-चलते घने जङ्गल के भीतर एक ब्राह्मण से मुलाक़ात हुई। ब्राह्मण की देह पर रामनामी थी, ललाट पर चन्दन का तिलक, सर घुटा हुआ। ब्राह्मण देखने में गोरे, बहुत सुन्दर गढ़न के, उम्र बहुत ज्यादा नहीं। ब्राह्मण प्रफुल्ल को देखकर कुछ विस्मय में आये। पूछा—कहाँ जाओगी, माँ ?

प्रफुल्ल—बाज़ार जाऊँगी।

ब्राह्मण—इधर बाज़ार का रास्ता कहाँ ?

प्र०—तो किस तरफ़ है ?

ब्रा०—तुम कहाँ से आ रही हो ?

प्र०—इसी जङ्गल से।

ब्रा०—इसी जङ्गल में तुम रहती हो ?

प्र०—हाँ।

ब्रा०—तो तुम बाज़ार का रास्ता नहीं पहचानतीं ?

प्र०—मैं नई-नई आई हूँ।

ब्रा०—इस वन में कोई अपनी इच्छा से नहीं आता। तुम क्यों आई ?

प्र०—मुझे बाज़ार का रास्ता बतला दीजिए।

ब्रा०—बाज़ार एक पहर का रास्ता है। तुम अकेली नहीं जा सकोगी। चोर-डाकुओं का बड़ा भय है। तुम्हारे और कौन है ?

प्र०—और कोई नहीं।

ब्राह्मण देर तक प्रफुल्ल के मुँह की तरफ़ देखता रहा। मन ही मन कहा कि इस बालिका में सभी सुलक्षण मिलते हैं। अच्छी बात है, देखा जाय, क्या मामला है? खुलकर कहा—तुम अकेली बाज़ार न जाओ। बिपत में फँसोगी। यहाँ मेरी एक दूकान है। इच्छा हो तो वहाँ से चावल-दाल ख़रीद ले सकती हो।

प्रफुल्ल ने कहा—यहीं हो तो अच्छा हो। लेकिन आपको तो ब्राह्मण-पण्डित की तरह देख रही हूँ।

"ब्राह्मण-पण्डित बहुत तरह के हैं बेटी, तुम मेरे साथ आओ।" यह कहकर ब्राह्मण प्रफुल्ल को साथ लेकर और भी घने जङ्गल में पैठा। प्रफुल्ल को कुछ कुछ भय होने लगा, परन्तु इस वन में भय है कहाँ नहीं? देखा, वहाँ एक कुटिया है ताला बन्द. और कोई नहीं। ब्राह्मण ने ताला खोला। प्रफुल्ल ने देखा, यह दूकान नहीं, लेकिन हंडी, घड़ा, चावल, दाल, नमक, तेल काफ़ी मात्रा में है। ब्राह्मण ने कहा—तुम जो कुछ अकेली ले जा सको, ले जाओ।

जितना ले जा सकती थी, प्रफुल्ल ने ले लिया। पूछा—दाम कितना देना होगा?

ब्रा०—एक आना।

प्र०—मेरे पास पैसे नहीं हैं।

ब्रा०—रुपया है? दो, तुड़ा देता हूँ।

प्र०—मेरे पास रुपया भी नहीं।

ब्रा०—तो क्या लेकर बाज़ार जा रही थीं ?

प्र०—एक मोहर है।

ब्रा०—देखूँ।

प्रफुल्ल ने मोहर दिखाई। उसे देखकर ब्राह्मण ने लौटा दिया। कहा—मोहर तुड़ा दूँ, इतने रुपये मेरे पास नहीं। चलो, तुम्हारे साथ तुम्हारे घर चलता हूँ, वहीं मुझे पैसे देना।

प्र०—मेरे घर में भी पैसे नहीं है।

ब्रा०—मोहरें ही मोहरें हैं ? अच्छा, हाँ, चलो, तुम्हारा घर पहचान आऊँ। जब तुम्हारे हाथ में पैसे आवेंगे, तब मुझे देना। मैं जाकर ले आऊँगा।

"मोहरें ही मोहरें हैं" यह बात प्रफुल्ल के कानों को अच्छी नहीं लगी। प्रफुल्ल समझी, इस चतुर ब्राह्मण ने समझा है कि प्रफुल्ल के बहुत सी मोहरें हैं, और उसी लोभ से मेरा मकान देखना चाहता है। प्रफुल्ल ने जो कुछ सामान लिया था, रख दिया। कहा—मुझे बाज़ार ही जाना होगा। मुझे कपड़े-धोतियाँ भी खरीदनी हैं।

ब्राह्मण हँसा। बोला,—माँ तुम सोच रही हो, मैं तुम्हारा मकान पहचान आऊँगा तो तुम्हारी मोहरें चुरा लूँगा ? लेकिन तुमने क्या सोचा है, बाज़ार जाने पर भी तुम मुझसे बच जाओगी ? मैं अगर तुम्हारा साथ न छोड़ूँ तो तुम किस तरह छोड़ोगी ?

ग़ज़ब हो गया ! प्रफुल्ल की देह काँपने लगी।

ह्मण ने कहा—मैं तुम्हारे साथ दग़ा नहीं करूँगा। मुझे ा-पण्डित समझो चाहे और कुछ, हूँ मैं डाकुओं का सरदार; नाम है भवानी पाठक।

प्रफुल्ल निःस्पन्द हो गई। भवानी पाठक का नाम उसने दुर्गा-में भी सुना था। भवानी पाठक मशहूर डाकू है। उसके डर से वरेन्द्रभूमि काँपती है। प्रफुल्ल की ज़बान रुक गई।

"अगर विश्वास न होता हो तो प्रत्यक्ष देखो।" यह कहकर भवानी ने घर के भीतर से एक नक्क़ारा या दमामा बाहर निकालकर उसमें कुछ चोटें कीं। क्षण भर में यम की तरह के भयंकर पचास-साठ आदमी, खासे-खासे जवान-लाठी और बल्लम लिये हुए, आकर हाज़िर हो गये। उन लोगों ने भवानी से पूछा—"क्या हुक्म है?

भवानी ने कहा—"इस बालिका को तुम लोग पहचान रक्खो। मैंने इसे माँ कहा है। इसे तुम सब लोग भी माँ कहना और माँ की निगाह से देखना। तुम लोग इसका कोई नुक़सान न करना और दूसरे को भी न करने देना। अब तुम जा सकते हो।"

यह कहते ही डाकुओं का वह दल क्षण भर में आँखों से ओझल हो गया।

प्रफुल्ल को बड़ा तअज्जुब हुआ। लेकिन वह स्थिरबुद्धि थी। उसी वक्त समझ गई कि इसकी शरण में गये बिना दूसरा उपाय नहीं। कहा—चलिए, आपको अपना मकान दिखा दूँ।

प्रफुल्ल ने जो सामान रख दिया था, फिर उठा। वह आगे आगे चली, भवानी पाठक पीछे पीछे चले। वे लोग प्रासाद में उपस्थित हुए। बोझ उतारकर प्रफुल्ल ने भवानी को बैठने के लिए एक फटी कुशासनी दी। वैरागी की यही कुशासनी थी।

बारहवाँ परिच्छेद

भवानी पाठक ने पूछा—इसी गिरे प्रासाद में तुमने मोहरें पाई हैं ?

प्र०—जी हाँ।

भ०—कितनी ?

प्र०—बहुत।

भ०—ठीक-ठीक कहो कितनी। धोखाधड़ी करने पर मेरे आदमी आकर तमाम मकान खोदकर देखेंगे।

प्र०—बीस घड़े।

भ०—यह धन लेकर तुम क्या करोगी ?

प्र०—घर ले जाऊँगी।

भ०—रख सकोगी ?

प्र०—आप मदद दें तो रख सकती हूँ।

भ०—इस वन में मेरा पूरा अधिकार है। इसके बाहर मेरी वैसी शक्ति नहीं। इस वन के बाहर धन ले जाने पर मैं रक्षा नहीं कर सकूँगा।

प्र०—आप रक्षा करेंगे तो मैं इस वन में ही यह धन लेकर रहूँगी।

भ०—करूँगा, परन्तु तुम इतना धन लेकर क्या करोगी ?

प्र०—लोग ऐश्वर्य लेकर क्या करते हैं ?

भ०—भोग करते हैं।

प्र०—मैं भी भोग करूँगी।

भवानी महाराज अट्टहास करने लगे। प्रफुल्ल अप्रतिभ हो गई। देखकर भवानी ने कहा—मां, बेवकूफ लड़की की तरह तुमने जवाब दिया, इसी लिए हँसा। तुम्हारे तो कोई नहीं, तुम ने कहा है। तुम किसे लेकर इस ऐश्वर्य का भोग करोगी ? अकेले कभी ऐश्वर्य का भोग होता है ?

प्रफुल्ल ने सर झुका लिया। भवानी कहते गये—सुनो, धन लेकर कोई भोग करता है, कोई पुण्य-सञ्चय करता है, कोई नरक का रास्ता साफ करता है। तुम भोग नहीं कर सकतीं; क्योंकि तुम्हारे कोई नहीं। तुम पुण्य-सञ्चय कर सकती हो। नहीं तो नरक का रास्ता साफ कर सकती हो। कौन सा करोगी ?

प्रफुल्ल बड़ी हिम्मतवर है। कहा,—ये सब बातें तो डाकुओं के सरदार की जैसी नहीं।

भ०—नहीं, मैं केवल डाकुओं का सरदार नहीं। तुम्हारे पास मैं अब डाकुओं का सरदार नहीं, तुम्हें मैंने मां कहा है, इसलिए तुम्हारे हक़ में जो कुछ अच्छा होगा मैं वही कहूँगा। धन का भोग तुम्हारा नहीं हो सकता; क्योंकि तुम्हारे कोई नहीं। परन्तु इस धन के द्वारा बहुत काफी पाप अथवा पुण्य प्राप्त कर सकती हो। किस रास्ते जाना चाहती हो ?

प्र०—अगर कहूँ, पाप ही करूँगी।

भ०—तो मैं आदमी लगाकर तुम्हारा धन तुम्हारे साथ करके तुम्हें इस वन के बाहर निकाल दूँगा। इस वन में मेरे अनेक ऐसे अनुचर हैं जो तुम्हारे इस धन के लोभ से तुम्हारे साथ पाप-कर्म करने को तैयार हो जायेंगे। इसलिए तुम्हारी अगर ऐसी मति हुई तो मैं तुम्हें इसी वक्त यहाँ से बिदा करने को मजबूर हूँगा। यह वन मेरा ही है।

प्र०—आदमी देकर मेरा धन मेरे साथ भेजवा देंगे तो इसमें मेरे लिए हानि क्या है?

भ०—क्या रख सकोगी? तुम्हारे रूप है, जवानी है, जब भी डाकुओं के हाथ से निस्तार पा जाओ—लेकिन रूप और जवानी के हाथ से छुटकारा नहीं होगा। पाप की लालसा पूरी होते न होते धन समाप्त हो जायगा। कितना भी धन क्यों न रहे, खत्म करने को तुलने पर खत्म होते बहुत दिन नहीं लगते। इसके बाद माँ?

प्र०—इसके बाद क्या?

भ०—नरक का रास्ता साफ़ है। लालसा है, परन्तु लालसा की तृप्ति के साधन नहीं—यह नरक का साफ़ रास्ता है। पुण्य-सञ्चय करोगी?

प्र०—बाबा, मैं गृहस्थ की लड़की हूँ। कभी पाप नहीं जानती। मैं क्यों पाप के रास्ते जाऊँगी? मैं बड़ी कङ्गाल हूँ—मेरे अन्न-वस्त्र होने से ही बहुत है, मैं धन नहीं चाहती, गुज़र

हो जाय यही बहुत है। यह धन सब तुम लो, और ऐसी व्यवस्था कर दो जिससे मैं निष्पाप रहकर एक मुट्ठी अन्न पाऊँ।

भवानी ने मन ही मन प्रफुल्ल को धन्यवाद दिया, खुलकर कहा—धन तुम्हारा है, मैं नहीं लूँगा।

प्रफुल्ल चकित हुई। मन का भाव समझकर भवानी ने कहा—तुम सोच रही हो, यह डाकेजनी करके दूसरे का धन लूटकर खाता है, फिर इस तरह का ढोंग क्यों करता है? तुम्हें यह बात कहने की अभी जरूरत नहीं। परन्तु तुम अगर पाप करने की ओर बढ़ो तो तुम्हारा यह धन लूटें तो लूट सकते हैं। अभी यह धन न लूँगा। तुमसे फिर पूछता हूँ, यह धन लेकर तुम क्या करोगी?

प्र०—देखती हूँ, आप ज्ञानी हैं; आप ही मुझे सिखला दें। धन लेकर मैं क्या करूँ?

भ०—सिखाने में पाँच-सात साल समय लगेगा। अगर सीखो तो मैं सिखा सकता हूँ। इस पाँच-सात साल के बीच तुम वह धन स्पर्श न करना। खाने-कपड़े की तुम्हें तङ्गी नहीं होगी। तुम्हारे खाने-पहनने के लिए जो कुछ आवश्यक है, मैं भेजता रहूँगा। लेकिन मैं जो कुछ कहूँगा उस पर दूसरी बात कहे बिना उसे मानना होगा। क्यों, मञ्जूर है?

प्र०—रहूँगी कहाँ?

भ०—इसी जगह। जो कुछ टूटा-फूटा है, उसकी मरम्मत करा दूँगा।

प्र०—यहाँ अकेली रहूँगी ?

भ०—नहीं, मैं दो स्त्रियाँ भेज दूँगा। वे तुम्हारे पास रहेंगी। कोई डर न करना। मैं इस वन का मालिक हूँ। मेरे रहते तुम्हारा कोई अनिष्ट न होगा।

प्र०—आप किस तरह सिखलाइएगा ?

भ०—तुम लिख-पढ़ सकती हो ?

प्र०—नहीं।

भ०—तो पहले पढ़ना-लिखना सिखाऊँगा।

प्रफुल्ल स्वीकृत हुई। इस जङ्गल में एक आदमी सहायक पाकर वह खुश हुई।

भवानी महाराज बिदा हुए। उस टूटी अट्टालिका के बाहर आकर देखा, एक आदमी उनकी प्रतीक्षा कर रहा है। उसका तगड़ा बदन, गलमुच्छे और छँटे गलपट्टे हैं। भवानी ने उससे पूछा—रङ्गराज, यहाँ क्यों ?

रङ्गराज ने कहा—आपकी खोज में। आप यहाँ क्यों ?

भ०—इतने दिन जिसकी खोज में था, उसे पाया।

रङ्ग०—राजा ?

भ०—रानी।

रङ्ग०—अब और राजा-रानी की खोज नहीं करनी होगी। अँगरेज़ राजा हो रहे हैं। कलकत्ते में, कहते हैं, हस्टिन* नाम का कोई अँगरेज़ आया है। उसने अच्छी तरह राज्य सँभाला है।

---

* Warran Hastings.

भ०—मैं वैसा राजा नहीं खोजता। मैं जो कुछ खोजता हूँ, तुम वह जानते हो।

रङ्ग०—अभी क्या पाया आपने ?

भ०—वह पाने की सामग्री नहीं। उसे तैयार कर लेना होगा। ईश्वर लोहा पैदा करते हैं, आदमी कटारी बना लेता है। इस्पात अच्छा मिला है; अब पाँच-सात साल तक तैयार करके शान पर चढ़ाना होगा। देखना, इस मकान में मेरे सिवा कोई दूसरा मर्द न पैठने पाये। वह लड़की युवती है और सुन्दरी।

रङ्ग०—जो आज्ञा। फ़िलहाल इजारादार के लोगों ने रङ्गनपुर लूटा है। इसी लिए आपको खोज रहा हूँ।

भ०—चलो, तो हम लोग इजारादार की कचहरी लूटकर गाँव के लोगों का धन गाँव के लोगों में बाँट दें। गाँव के आदमी फ़िदार होंगे ?

रङ्ग०—मुमकिन है, हो जायँ।

सीखे।

तेरहवाँ परिच्छेद

भवानी महाराज ने जैसा स्वीकार किया था, दो स्त्रियों को भेज दिया। एक औरत पानी भरेगी, बाज़ार जायगी, और दूसरी प्रफुल्ल के पास हमेशा रहेगी। दोनों स्त्रियाँ दो तरह की। जो बाज़ार जानेवाली है, उसका नाम है गोबरे की माँ, उम्र तिहत्तर साल की, काली और बहरी। अगर वज्र-बहरी होती तो ग़नीमत होती; किसी तरह इशारे पर चलती होती; यह वैसी नहीं। कोई कोई बात कभी कभी सुन लेती है, और कोई बात कभी नहीं सुन पाती। इस तरह होने पर बड़ी आफ़त खड़ी हो जाती है।

जो पास रहने के लिए आई थी, वह सम्पूर्ण रूप से दूसरी प्रकृति की स्त्री थी। उम्र में प्रफुल्ल से पाँच-सात साल बड़ी होगी। उज्ज्वल श्यामवर्ण—वर्षाकाल के कोंपल जैसा रङ्ग। रूप छलका पड़ रहा है।

दोनों एक जगह आईं—जैसे पूनों ने अमावस का हाथ पकड़ा। गोबरे की माँ ने प्रफुल्ल को प्रणाम किया। प्रफुल्ल ने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है जी?

गोबरे की माँ ने नहीं सुना। दूसरी स्त्री ने कहा—यह ज़रा बहरी है, इसे लोग गोबरे की माँ कहते हैं।

प्र०—गोबरे की माँ! तुम्हारे कितने लड़के हैं?

गोबरे की माँ—मैं हूँ और कहाँ ? मकान में हूँ।

प्र०—तुम किस जाति की हो ?

गोबरे की माँ—जाते-आते मुझे तकलीफ़ नहीं होगी। जहाँ तुम कहोगी, वहीं जाऊँगी।

प्र०—मैं पूछती हूँ, तुम कौन लोग हो ?

गोबरे की माँ—तुम्हें और लोगों की जरूरत क्या है माँ ? मैं अकेली ही तुम्हारा सब काम कर दूँगी। बस दो-एक काम नहीं कर सकूँगी।

प्र०—क्या नहीं कर सकोगी ?

गोबरे की माँ ने सुन लिया। कहा, क्या नहीं कर सकूँगी ? यही—पानी नहीं भर सकूँगी। मेरी कमर में ज़ोर नहीं। और धोती-कपड़े धोना, वह न-हो माँ तुम्हीं कर लेना।

प्र०—और तो सब कर लोगी ?

गोबरे की माँ—चौका-टहल, वह भी न-हो तुम्हीं कर लेना।

प्र०—यह भी नहीं होगा, तो होगा क्या ?

गो० की माँ—और ऐसा कुछ नहीं,—यही घर बुहारना—झाड़ू लगाना, यह भी बहुत नहीं सधता।

प्र०—तो सधेगा क्या ?

गो० की माँ—और जो कुछ कहो। बत्तियाँ बटूँगी, घड़ा लुढ़काकर पानी दूँगी, अपनी जूठी पत्तल उठकर फेक दूँगी, और असली काम जो है वह करूँगी,—बाज़ार जाऊँगी।

प्र०—बिसाते का हिसाब दे सकोगी ?

गो० की माँ—भला माँ, मैं बहिर-बजागर औरत, मैं इतना सब क्या कर सकूँगी ? लेकिन पैसे-कौड़ी जो कुछ दोगी, सब खर्च कर आऊँगी—तुम कह नहीं सकोगी कि मेरा यह खर्च नहीं हुआ।

प्र०—बच्ची, तुम्हारे गुणों की औरत मिलना दुश्वार है।

गो० की माँ—सो, माँ, जो कुछ भी कहती हो, अपने गुणों से कहती हो।

तब दूसरी से प्रफुल्ल ने कहा—क्यों जी, तुम्हारा नाम क्या है ?

नवागता सुन्दरी ने कहा—सो तो भई मुझे नहीं मालूम।

प्रफुल्ल ने हँसकर कहा—वह क्या ? माँ-बाप ने क्या नाम नहीं रक्खा ?

सुन्दरी ने कहा—रखना ही सम्भव है। परन्तु मुझे सविशेष मालूम नहीं।

प्र०—सो कैसे जी ?

सुन्दरी—ज्ञान होने के पहले से ही मैं माँ-बाप के सङ्ग से छुटी हूँ। बचपन में मुझे लड़के पकड़नेवाले चुरा ले गये थे।

प्र०—अच्छा। तो उन लोगों ने भी तो एक नाम रक्खा होगा ?

सुन्दरी—तरह तरह के नाम रक्खे।

प्र०—कौन कौन-से ?

सुन्दरी—गाजमारी, नासकाटी, बापखाई, घरमुँही।

अब तक गोबरे की माँ की श्रवण-शक्ति खोई हुई थी; इन कुछ सदाश्रुत गुणवाचक शब्दों से जग गई। उसने कहा—जो मुझे

गाजमारी कहे, वह खुद गाजमारी; जो मुझे घुरमुँही कहे, वह घुरमुँही; जो मुझे बाँझबाँड़ी कहे वह खुद बाँझबाँड़ी—

सुन्दरी—मैंने बाँझबाड़ी नहीं कहा, बच्ची।

गोबरे की माँ—तूने बाँझबाड़ी कहने से भी कहा है, न कहने से भी कहा है—तू क्यों कहेगी री ?

प्रफुल्ल ने हँसकर कहा—तुम्हें नहीं कह रही, वह मुझे कह रही है।

तब साँस छोड़कर गोबरे की माँ ने कहा—अरे, मुझे नहीं ? तो कहे माँ, कहे, तुम नाराज़ न हो। इस बम्हनी का मुँह बड़ा गन्दा है। लेकिन बच्ची, इससे नाराज़ नहीं होना चाहिए।

गोबरे की माँ के मुँह से इस तरह अपने पक्ष में वीर-रस और दूसरे पक्ष में शान्त-रस की अवतारणा सुनकर दोनों युवतियाँ बहुत खुश हुईं। प्रफुल्ल ने दूसरी से पूछा—"तुम ब्राह्मणी हो ? मगर अब तक मुझसे नहीं कहा। मैंने प्रणाम नहीं किया।" प्रफुल्ल ने प्रणाम किया।

हमजोलीवाली असीस देती हुई बोली—मैं ब्राह्मण की लड़की हूँ, मैंने सुना है, मगर मैं ब्राह्मणी नहीं।

प्र०—सो क्या ?

हमजोली—ब्राह्मण नहीं नसीब हुआ।

प्र०—विवाह नहीं हुआ ? यह क्या ?

हमजोली—लड़के पकड़नेवाले भी कभी विवाह कर देते हैं ?

प्र०—सदा क्या तुम लड़के पकड़नेवालों के ही यहाँ हो ?

हमजोली—नहीं। लड़के पकड़नेवाले एक राजा के यहाँ बेच आये थे।

प्र०—राजाओं ने शादी नहीं कर दी ?

हमजोली—राजपुत्र की इच्छा थी, परन्तु विवाह गन्धर्व-मत से करना चाहते थे।

प्र०—दूल्हे खुद थे ?

हमजोली—वह भी कितने दिनों के लिए, नहीं कह सकती।

प्र०—इसके बाद ?

हमजोली—तौर-तरीक़ा मालूम कर भागी।

प्र०—इसके बाद ?

हमजोली—रानी ने कुछ उन्हीं को गहने दिये थे, लेकर भागी थी। इसलिए डाकुओं के हाथ पड़ी। उन डाकुओं के सरदार भवानी महाराज थे। उन्होंने मेरी दास्तान सुनकर मेरे गहने नहीं लिये, बल्कि और भी कुछ दिये। अपने घर में मुझे आश्रय दिया। मैं उनकी लड़की हूँ, वे मेरे पिता हैं। उन्होंने भी एक प्रकार से मेरा सम्प्रदान किया है।

प्र०—एक प्रकार से क्या ?

हमजोली—सर्वस्व श्रीकृष्ण पर।

प्र०—वह किस तरह ?

हमजोली—रूप, यौवन, प्राण, सब श्रीकृष्ण पर।

प्र०—वही तुम्हारे पति हैं ?

हमजोली—हाँ, क्योंकि जो सब तरह से मुझमें मेरे अधिकारी हैं, वही मेरे पति हैं।

प्रफुल्ल ने लम्बी साँस छोड़कर कहा—कह नहीं सकती। कभी पति तुमने देखा नहीं, इसी लिए कह रही हो। पति को देखने पर कभी श्रीकृष्ण पर मन न जाता।

मूर्ख व्रजेश्वर इतना नहीं जानता था।

हमजोलीवाली ने कहा—श्रीकृष्ण पर सब स्त्रियों का मन जा सकता है, क्योंकि उनका रूप अनन्त है, यौवन अनन्त है, ऐश्वर्य अनन्त है, गुण अनन्त हैं।

यह युवती भवानी महाराज की शिष्या है, परन्तु प्रफुल्ल निरक्षर है—इस बात का उत्तर न दे सकी। हिन्दू-धर्म के प्रणेता उत्तर जानते थे। ईश्वर अनन्त है, जानता हूँ। परन्तु अनन्त को हम इस छोटे से हृदय में नहीं रख सकते। सान्त को रख सकते हैं। इसी लिए अनन्त जगदीश्वर हिन्दुओं के हृदय-पिञ्जर में सान्त श्रीकृष्ण हैं। पति और भी साफ़ तौर से सान्त है। इसी लिए प्रेम पवित्र होने पर पति ही ईश्वर पर चढ़ने की पहली सीढ़ी है। इसी लिए हिन्दू-स्त्री का पति ही देवता है। और सब समाज हिंदू-समाज के पास इस अंश में निकृष्ट है।

प्रफुल्ल मूर्ख लड़की है। कुछ भी नहीं कह सकी। कहा—भई, मैं इतनी बातें नहीं समझ सकती। लेकिन तुम्हारा नाम क्या है, यह तुमने अभी तक नहीं कहा।

हमजोलीवाली ने कहा—भवानी महाराज ने नाम रक्खा है निशि। मैं दिवा की बहन निशि हूँ। दिवा को एक दिन बात-चीत करने के लिए ले आऊँगी। परन्तु जो कुछ कह रही थी, सुनो। ईश्वर ही परम पति हैं। स्त्री के देवता पति हैं, श्रीकृष्ण सब के देवता हैं। लेकिन भई, दो देवता क्यों—दो ईश्वर? इस छोटी-सी जान के दो टुकड़े करने पर कितना बच रहता है?

प्र०—चलो। स्त्री की भक्ति का कहीं अन्त है?

निशि—स्त्री के प्यार का अन्त नहीं। भक्ति और है, प्यार और।

प्र०—यह मैं आज भी नहीं जान सकी। मेरे लिए दोनों नये हैं।

प्रफुल्ल की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। निशि ने कहा—मैं समझ गई, बहन, तुम्हें बड़ा दुःख मिला है।

तब निशि ने प्रफुल्ल का गला लपेटकर आँसू पोंछ दिये। कहा, "इतना नहीं जानती थी!" निशि तब समझी, ईश्वर-भक्ति की पहली सीढ़ी पति-भक्ति है।

चौदहवाँ परिच्छेद

जिस रात को दुर्लभ चक्रवर्ती प्रफुल्ल को उसके मायके से पकड़ ले गया था, दैवयोग से व्रजेश्वर उसी रात को प्रफुल्ल के यहाँ दुर्गापुर पहुँचे थे। व्रजेश्वर के एक घोड़ा था, वे घोड़े की सवारी में दक्ष थे। जब मकान के सब आदमी सो गये, व्रजेश्वर चुपचाप उस घोड़े पर सवार हुए और अँधेरे ही अँधेरे दुर्गापुर को रवाना हुए। जब वे प्रफुल्ल की कुटिया में पहुँचे, तब उसमें कोई नहीं था, अँधेरा ही अँधेरा था। प्रफुल्ल को चोर उठा ले गये थे। उस रात को व्रजेश्वर किसी पड़ोसी से नहीं मिल सके, जिससे कुछ पूछते।

प्रफुल्ल को न देखकर व्रजेश्वर ने सोचा, प्रफुल्ल अकेली न रह सकने के कारण किसी आत्मीय के यहाँ गई है। फिर वे प्रतीक्षा नहीं कर सके। पिता के डर से रातोंरात लौट आये। इसके बाद कुछ दिन बीते। हरवल्लभ की दुनिया जिस तरह चलती थी, वैसी ही चलती गई। सब लोग खाते पीते घूमते, गृहस्थी के काम करते थे। सिर्फ व्रजेश्वर के दिन ठीक उसी तरह नहीं कटते थे। एकाएक किसी की समझ में कुछ नहीं आया, किसी ने नहीं जाना। पहले माँ समझी। गृहिणी ने देखा, लड़के की थाली से लगा दूध कटोरे में ही रह जाता है, भोजन अच्छा नहीं पका कहकर व्रजेश्वर भाजियाँ हटा देता है। माँ ने सोचा, लड़के को मन्दाग्नि

हुई है। पहले जारक निम्बू आदि से हाज़मा दुरुस्त करने की व्यवस्था की, इसके बाद वैद्य बुलाने की बात उठाई। ब्रजेश्वर ने हँसकर बात उड़ा दी। माँ को ब्रजेश्वर ने हँसकर दरकिनार किया, परन्तु दादी को नहीं कर सके। एक दिन ब्रजेश्वर को अकेला पाकर बूढ़ी ने दबाया—क्यों रे ब्रज, तू अब नयन-बहू का मुँह क्यों नहीं देखता?

हँसकर ब्रजेश्वर ने कहा—एक तो मुँह ऐसे ही अमावस की रात है, इस पर बादल और आँधी के सिवा कुछ नहीं। देखने की बड़ी इच्छा नहीं रही।

दादी—चूल्हे में जाय। तो फिर यह बात नयन-बहू खुद समझे, पर तू खाता क्यों नहीं?

ब्रज—भोजन तुम जो पकाती हो।

दादी—मैं तो हमेशा ऐसा ही पकाती हूँ।

ब्रज—आज-कल हाथ मँज गया है।

दादी—दूध भी मैं उबालती हूँ? उसमें भी कोई पकने-पकाने की कसर रहती है?

ब्रज—गौओं का दूध बिगड़ गया है।

दादी—तू मुँह फैलाकर दिन-रात सोचता क्या है?

ब्रज—यही कि कब तुम्हें गङ्गाजी ले जाऊँ।

दादी—चल, बड़ी तारीफ़ न कर। ज़बान से ऐसा बहुतेरे कहते हैं। अन्त में इसी नीम के नीचे मुझे गङ्गाजी पहुँचाएगा, तुलसी का पेड़ भी देखने को नहीं मिलेगा। पर तू सोच जो कुछ

सोचना चाहता है, लेकिन मेरे गङ्गालाभ की बात सोचता सोचता इतना दुबला क्यों हो गया ?

ब्रज—यह क्या मामूली चिन्ता है ?

दादी—कल जब तू नहाने गया था तब घाट के सहन में बैठा क्या सोच रहा था ? आँखों से आँसू क्यों बह रहे थे ?

ब्रज—सोच रहा था कि नहाकर ही तुम्हारा भोजन खाना होगा। इसी दुःख से आँखों में आँसू आ रहे थे।

दादी—सागर आकर पकाये ? तब तो खा सकेगा ?

ब्रज—क्यों, सागर तो रोज़ पकाती थी, किसी दिन उसके घरौंदे में नहीं गईं ? धूल की भाजी, कीच की रसेदार और ईंटों की सूखी तरकारी—एक दिन खाकर देखो न—इसके बाद मुझे खाने को कहना।

दादी—प्रफुल्ल आकर पका दे ?

जैसे रास्ते से कोई दिया लेकर जाता है तो बग़ल के अँधेरे मकान पर उसका प्रकाश पड़ने पर मकान एक दफ़ा हँसकर फिर उसी वक्त धुँधला हो जाता है, प्रफुल्ल के नाम से ब्रजेश्वर का मुँह वैसा ही हुआ। ब्रजेश्वर ने जवाब दिया—वह बान्दिन जो है।"

दादी—बान्दिन नहीं। सब जानते हैं, वह झूठ बात है। तुम्हारे बाप को सिर्फ़ समाज का डर है, लेकिन लड़के से समाज बड़ा नहीं। यह बात क्या फिर उठाऊँ ?

ब्रज०—नहीं; मेरे लिए समाज में पिताजी का अपमान होगा; ऐसा भी कहीं हो सकता है ?

उस दिन और ज्यादा बात-चीत नहीं हुई। दादी भी सारी बात नहीं समझ पाई। बात भी बहुत सीधी नहीं। प्रफुल्ल का रूप तुलना से परे है; पहले तो रूप से ही वह ब्रजेश्वर के हृदय पर अधिकार कर चुकी थी, फिर उस एक रात में ही ब्रजेश्वर ने देखा था—उसके बाहर से उसका भीतर और भी सुन्दर है—और भी मधुर। यदि प्रफुल्ल ब्याही स्त्री के अधिकार प्राप्त कर नयनतारा की तरह पास रहती, तो यह उन्माद पैदा करनेवाला मोह स्निग्ध स्नेह में बदल जाता; रूप का मोह दूर हो जाता; गुणों का मोह रहता। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। प्रफुल्ल बिजली की तरह एक दफ़ा कौंधकर हमेशा के लिए अँधेरे में लीन हो गई। इसी लिए वह मोह हज़ार गुना प्रबल हो गया। लेकिन यह तो हुई सीधी बात। कठिन यह कि इस पर अपार करुणा है। उस सोने की प्रतिमा को उसके अधिकार से जुदा करके, अपमान कर, झूठा कलंक लगाकर हमेशा के लिए निकाल देना पड़ा है। इस समय वह एक-एक दाने को मोहताज है। मुमकिन है, खाने को न पाकर मर जाय। यह घने अनुराग पर गहरी करुणा है—मात्रा भरी पूरी। ब्रजेश्वर का हृदय प्रफुल्लमय है, और किसी के लिए वहाँ जगह नहीं। बुड्ढी इतनी बात भी नहीं समझी।

कुछ दिन बाद फूलमणि नाइन की फैलाई हुई प्रफुल्ल के ग़ायब होने की कथा हरवल्लभ के घर पहुँची। कहानी मुँह मुँह से बदलती हुई चलती है। ख़बर यहाँ इस रूप में पहुँची कि प्रफुल्ल

कफ और वायु के विकार से मरी है—मरने से पहले अपनी मरी माँ को देखा था। ब्रजेश्वर ने भी सुना।

हरवल्लभ ने शौच-स्नान तो किया, परन्तु श्राद्धादि रुकवा दिया। कहा, "बान्दिन का श्राद्ध ब्राह्मण करेंगे?" नयनतारा ने भी स्नान किया, सर का पानी पोंछकर कहा, "एक पाप तो कटा, एक और है, इसके लिए भी यह नहान नहा पाऊँ तो देह जुड़ा जाय।" कुछ दिन बीते। क्रम-क्रम से सूखते हुए ब्रजेश्वर ने चारपाई ली। रोग ऐसा कुछ नहीं, थोड़ा-थोड़ा सा बुखार होता है, बस! परन्तु ब्रजेश्वर निर्जीव-सा है, पलँग पर पड़ा हुआ। वैद्य ने देखा। दवादारू से कुछ नहीं हुआ। रोग बढ़ गया। अन्त में शंका हुई, ब्रजेश्वर बचे, न बचे।

असली बात अब बहुत छिपी नहीं रही। पहले बूढ़ी समझी थी, बाद को गृहिणी भी समझीं। ये सब बातें औरतें ही पहले समझती हैं। गृहिणी समझीं, इसी लिए मालिक भी समझे। तब हरवल्लभ के कलेजे में तीर चुभा। रोते हुए उन्होंने कहा, राम राम! मैंने क्या किया? अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारी है! गृहिणी ने प्रतिज्ञा की—लड़का न बचा तो मैं ज़हर खाऊँगी। हरवल्लभ ने प्रतिज्ञा की, इस बार देवता ब्रजेश्वर को बचा दें; अब मैं उसका मन बिना समझे कोई काम नहीं करूँगा।

ब्रजेश्वर बचे। क्रमशः अच्छे होने लगे। शय्या छोड़कर उठे। एक दिन हरवल्लभ के पिता का वार्षिक श्राद्ध था। हरवल्लभ

श्राद्ध कर रहे थे। किसी कार्य से व्रजेश्वर भी वहाँ मौजूद थे। उन्होंने सुना, श्राद्ध हो जाने पर पुरोहित ने यह श्लोक पढ़ाया—

"पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः॥"

श्लोक व्रजेश्वर ने कण्ठाग्र कर लिया। प्रफुल्ल के लिए जब बड़ी रुलाई आती थी, तब मन को समझाने के लिए कहते थे—

"पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः॥"

इस प्रकार व्रजेश्वर प्रफुल्ल को भूलने का प्रयत्न करने लगे। व्रजेश्वर के पिता ही प्रफुल्ल की मृत्यु के कारण है, यह बात याद आने पर व्रजेश्वर सोचते थे,—

"पिता स्वर्गः पिता धर्मः
पिता हि परमं तपः।"

प्रफुल्ल गई, लेकिन फिर भी पिता के प्रति व्रजेश्वर की भक्ति अचला रही।

—

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

प्रफुल्ल की शिक्षा शुरू हुई। निशि देवी पहले राजा के यहाँ रही थीं, बाद भवानी महाराज के पास लिखना-पढ़ना सीखा था। उनसे प्रफुल्ल ने ककहरा, लिखावट, सवैया-अढ़ैया-पहाड़े और कुछ गणित सीखा। इसके बाद पाठक महाराज ने स्वयं अध्यापक का आसन ग्रहण किया। व्याकरण से श्रीगणेश कराया गया। शुरू करने के दो ही चार दिन में अध्यापक चकित हो गये। प्रफुल्ल की बुद्धि बड़ी तेज़ थी, सीखने की इच्छा बहुत ही प्रबल। प्रफुल्ल बहुत जल्दी सीख जाने लगी। उसकी मिहनत देखकर निशि भी दङ्ग हो गई। प्रफुल्ल का पकाना, खाना और सोना नाममात्र रह गया। केवल 'सु, औ, जस्; अम्, औ, शस्' आदि में मन लगा। निशि समझी कि उन 'दोनों नयों' को भूलने के लिए एकाग्र चित्त से विद्या प्राप्त करने की कोशिश कर रही है। कुछ महीनों में व्याकरण पर अधिकार हो गया। इसके बाद प्रफुल्ल भट्टी काव्य जल पर तैरती हुई-जैसे पार कर गई। साथ-साथ शब्दों का ज्ञान भी परिवर्द्धित हुआ। रघुवंश, कुमारसम्भव, नैषध, शकुन्तला आदि काव्यग्रन्थ बिना बाधा के अधीत हो गये। तब आचार्य ने कुछ साङ्ख्य, कुछ वेदान्त और कुछ न्याय पढ़ाया। यह सब थोड़ा थोड़ा। इन सब दर्शनों की भूमिका बाँधकर प्रफुल्ल को विस्तार के साथ योगशास्त्र के अध्ययन में नियुक्त किया, और सब के बाद

सर्वोत्तम ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन कराय.
में पढ़ाई पूरी हो गई।

इधर प्रफुल्ल की दूसरी तरह की शिक्षा की ओर भी वे रहे। गोबरे की माँ कोई काम नहीं करती, सिर्फ़ बाज़ार करत. वह भी भवानी महाराज के इशारे से। बड़ी एक मदद निशि भ. नहीं करती। फलत: प्रफुल्ल को ही कुल काम करना पड़ता है। इससे प्रफुल्ल को कोई तकलीफ़ नहीं होती। मा के यहाँ भी कुल काम उसे करना पड़ता था। पहले साल उसके भोजन की व्यवस्था भवानी महाराज ने की—अरवे चावल, सेंधा नमक, घी और कच्चे केले (भाजी के लिए)। और कुछ नहीं। निशि के लिए भी वही। प्रफुल्ल को उससे भी कोई कष्ट नहीं हुआ। मायके में सब दिन ऐसा नहीं जुटता था।

दूसरे साल निशि के भोजन की व्यवस्था पहली जैसी रही, परन्तु प्रफुल्ल के लिए सिर्फ़ नमक, मिर्च और चावल। इस पर प्रफुल्ल ने कोई आपत्ति नहीं की।

तीसरे साल निशि के लिए आज्ञा हुई, "तुम छेना, सन्देश, घी, मक्खन, खीर, फल-मूल और अन्न की चीज़ें अच्छी तरह खाओ; लेकिन प्रफुल्ल सिर्फ़ नमक, मिर्च और चावल खायगी; और दोनों एक साथ बैठकर खाना।" भोजन के समय प्रफुल्ल और निशि दोनों बैठी हुई हँसती थीं। अच्छी अच्छी चीज़ें अक्सर निशि नहीं खाती थी, गोबरे की माँ को देती थी। इस परीक्षा में भी प्रफुल्ल उत्तीर्ण हुई।

प्रफुल्ल के लिए उत्तम पदार्थ खाने की आज्ञा हुई।

, रही।

.चवें साल उसे इच्छानुरूप भोजन करने की आज्ञा हुई।

,ल्ल ने पहले साल वाला भोजन पसन्द किया।

कपड़े, बिस्तर और सोने के सम्बन्ध में भी, इसी के अनुरूप भवानी महाराज ने प्रफुल्ल का अभ्यास डाला। पहले साल पहनने को चार धोतियाँ दी गईं। दूसरे साल दो। तीसरे साल गरमी में एक मोटा गाढ़ा बदन में सुखा लेना पड़ा, जाड़े में ढाके की मलमल। चौथे साल पट्टाम्बर, ढाके के फूलदार, शान्तिपुर के। प्रफुल्ल उन चौड़े अर्ज की साड़ियों को फाड़कर सकरी करके पहनती थी। पाँचवें साल इच्छानुसार वेश करने की आज्ञा हुई। प्रफुल्ल ने मोटा गाढ़ा ही पसन्द किया। बीच-बीच, खारे से साफ़ कर लेती थी।

बाल बाँधने के सम्बन्ध में भी ऐसा ही रहा। पहले साल तेल लगाना मना हुआ, ऐसे ही बाल बाँधने पड़ते थे।

दूसरे साल बाल बाँधना रोक दिया गया। रात-दिन रूखे बालों की राशि लहराती थी। तीसरे साल भवानी महाराज की आज्ञा के अनुसार उसने सर घुटाया। चौथे साल नये बाल बढ़े। भवानी महाराज ने आज्ञा की, केशों को ख़ुशबूवाले तेल से हमेशा तर रक्खो। पाँचवें साल स्वेच्छाचार। प्रफुल्ल ने पाँचवें साल बालों में हाथ भी नहीं लगाया।

पहले साल रूई के गद्दे वाले बिछौने पर प्रफुल्ल तकिये लगाकर सोई। दूसरे साल बिचाली का तकिया, बिचाली का

बिछौना। तीसरे साल ज़मीन पर लेटना। चौथे साल दूध के फेन-सी सफ़ेद और कोमल सेज मिली। पाँचवें साल अपनी तबियत। पाँचवें साल प्रफुल्ल जहाँ चाहती थी, सोती थी।

पहले साल तीन-पहर सोने को समय मिलता था। दूसरे साल दो-पहर। तीसरे साल दो दिन बाद सारी रात जगना। चौथे साल नींद लगने पर सोना। पाँचवें साल इच्छा-आचरण। प्रफुल्ल रात जगकर पढ़ती और किताबें नक़ल करती थी।

प्रफुल्ल हवा-पानी, धूप, और आग के सम्बन्ध में भी देह को सहिष्णु बनाने लगी। भवानी महाराज ने प्रफुल्ल को एक और आज्ञा दे रक्खी, वह कहते लाज लगती है। लेकिन न कहने पर बात अधूरी रह जायगी। दूसरे साल भवानी महाराज ने आदेश किया—बेटी, तुम्हें कुश्ती भी सीखनी होगी।

प्रफुल्ल ने लज्जा से मुँह झुका लिया। अन्त में कहा—महाराज, और जो कुछ भी कहें करने को तैयार हूँ, सिर्फ़ यह नहीं होगा।

भ०—इसके बिना बनेगा भी नहीं।

प्र०—यह क्या महाराज, औरत मल्लयुद्ध सीखकर क्या करेगी ?

भ०—इन्द्रिय पर विजय पाने के लिए। कमज़ोर बदनवाला इन्द्रिय नहीं जीत सकता। व्यायाम के बिना इन्द्रिय-जय का दूसरा चारा नहीं।

प्र०—मुझे मल्ल-युद्ध सिखायेगा कौन ? किसी मर्द के साथ मैं मल्लयुद्ध नहीं सीख सकूँगी।

भ०—निशि सिखलायेगी ? निशि बच्चे पकड़नेवालों में पली लड़की है। वे तन्दुरुस्त लड़के-लड़कियाँ ही दल में लेते हैं। उनके

गरोह में रहकर बचपन में निशि ने व्यायाम सीखा था। यह सब सोच-समझकर मैंने निशि को तुम्हारे पास भेजा है।

प्रफुल्ल चार साल तक मल्ल-युद्ध सीखती रही।

पहले साल भवानी महाराज किसी मर्द को वहाँ नहीं जाने देते थे। उसे मकान के भीतर किसी मर्द से बातें नहीं करने देते थे। दूसरे साल बातचीत का निषेध तोड़ दिया गया। लेकिन उसके मकान में किसी मर्द को नहीं जाने देते थे। बाद, तीसरे साल, जब प्रफुल्ल ने सर घुटाया, भवानी महाराज चुने हुए शिष्यों को लेकर मिलते थे। प्रफुल्ल घुटे-सर, आँखें झुका, उन लोगों से शास्त्रीय आलाप करती थी। चौथे साल, भवानी अपने अनुचरों में चुने हुए लठैत साथ लेकर आते थे, प्रफुल्ल को उनसे लड़ने को कहते थे। उनके सामने उनसे प्रफुल्ल लड़ती थी। पाँचवें साल कोई कैद नहीं रही। जरूरत के मुआफ़िक़ प्रफुल्ल उनसे मिलती, बातचीत करती थी। बिना काम के नहीं बुलाती थी। जब वह मर्दों से बातचीत करती थी, तब उन्हें अपना पुत्र समझकर।

इस तरह, अनेक प्रकार की परीक्षाएँ और अभ्यास पार कराते हुए, भवानी महाराज ने अतुल सम्पत्ति की अधिकारिणी प्रफुल्ल को ऐश्वर्य-भोग की योग्य पात्री बनाने का प्रयत्न किया। पाँच साल में कुल शिक्षाएँ समाप्त हुईं।

केवल एक विषय में प्रफुल्ल भवानी महाराज के खिलाफ़ हुई,—अपना परिचय कभी नहीं दिया। भवानी पूछताछ करके भी कुछ नहीं जान पाये।

सोलहवाँ परिच्छेद

पाँच साल में पढ़ाना ख़त्म करके भवानी महाराज ने प्रफुल्ल से कहा—पाँच साल हुए, तुम्हारी शिक्षा शुरू की गई थी, आज पूरी हुई। अब अपना हाथ आया धन अपनी तबियत से ख़र्च करो। मैं रोकूँगा नहीं। मैं सलाह दूँगा, जी चाहे—ग्रहण करना। भोजन अब मैं नहीं दूँगा। तुम खुद अपने दिन चलाने की सोचो। कुछ बातें कह दूँ। बातें कई मर्तबे कह चुका हूँ, एक दफा और कहता हूँ। अब तुम कौन सा रास्ता पकड़ना चाहती हो?

प्रफुल्ल ने कहा—काम करूँगी। ज्ञान मेरे जैसे असिद्ध के लिए नहीं।

भवानी ने कहा, अच्छा है, अच्छा है; सुनकर सुखी हुआ। परन्तु काम अनासक्त होकर करना होगा। याद है न?—भगवान् ने कहा है—

"तस्मादसक्तः सततं कार्य्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म्म पदमाप्नोति पौरुषम॥"

अब अनासक्ति क्या है, यह जानती हो। इसका पहला लक्षण इन्द्रिय-संयम है। "ये पाँच साल तुम्हें जो कुछ सिखलाया है, अब और बतलाने की ज़रूरत नहीं होगी। दूसरा लक्षण त्योरियों में बल न हो। अहंकार के रहते धर्म्म का आचरण नहीं होता। भगवान् ने कहा है—

"प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्म्माणि सर्वशः।
अहंकार-विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥"

इन्द्रिय आदि से जो काम किया जाता है, वह मैंने किया, यही ज्ञान अहंकार है। जो भी काम करो, तुम्हारा किया वह हुआ, कभी ऐसा न खयाल में लाओ। लाने पर पुण्य के काम को अकर्म्मण्यता मिलेगी। इसके बाद तीसरा लक्षण यह है कि सब कर्म्मों का फल श्रीकृष्ण में अर्पित होगा। भगवान् ने कहा है—

"यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्॥"

अब कहो तो, माँ, अपनी यह धनराशि लेकर तुम क्या करोगी?

प्र०—जब अपना समस्त मैंने श्रीकृष्ण को अर्पण किया, तब अपना धन भी अर्पण किया।

भ०—सब?

प्र०—सब।

भ०—इस तरह ठीक-ठीक अनासक्त कर्म नहीं होगा। अपने भोजन के लिए अगर तुम्हें कोशिश करनी पड़ी, तो आसक्ति पैदा होगी। या तो तुम्हें भीख माँगनी होगी या इसी धन से अपने शरीर की रक्षा करनी पड़ेगी। भीख माँगने में भी आसक्ति है। इसलिए इसी धन से अपनी देह-रक्षा करो। और सब श्रीकृष्ण को अर्पण करो। परन्तु श्रीकृष्ण के पादपद्मों में यह धन पहुँचेगा किस तरह?

प्र०—सीखा है। वे सब भूतों में स्थित हैं। अतएव सब भूतों में धन-वितरण करूँगी।

भ०—अच्छा-अच्छा! भगवान् ने स्वयं कहा है—

"यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वञ्च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥
आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥"

लेकिन इस सब भूतों तक फैलानेवाले दान के लिए बड़ी तकलीफें, बड़ी मिहनत ज़रूरी हैं। तुम झेल सकोगी?

प्र०—इतने दिन और क्या सीखा?

भ०—उस तकलीफ़ की बात नहीं कह रहा, कभी-कभी कुछ दूकानदारी चाहिए। कुछ बाल सवाँरने, कुछ भोग-विलास के ठाट की ज़रूरत होगी। यह बड़ी तकलीफ़ है। यह उठा सकोगी?

प्र०—वह किस तरह की?

भ०—सुनो। मैं तो डाका डालता हूँ, यह पहले ही कह चुका हूँ।

प्र०—मेरे पास श्रीकृष्ण का जो धन है, उसका कुछ आपके पास रहे। यह धन लेकर धर्म के आचरण में रहिए। बुरे कामों से हाथ खींचिए।

भ०—धन की मुझे कोई ज़रूरत नहीं। धन भी मेरे पास बहुत है। मैं धन के लिए डाके नहीं डालता।

प्र०—फिर किस लिए ?

भ०—मैं राज्य करता हूँ।

प्र०—डाका किस तरह का राज्य है ?

भ०—जिसके हाथ में राजदण्ड है, वही राजा है।

प्र०—राजा के हाथ में राजदण्ड है।

भ०—इस देश में राजा नहीं। मुसलमान नष्ट हो चुके हैं। आजकल अँगरेज़ पैर जमा रहे हैं। राज्य की बागडोर उन्हें लेनी नहीं आती। वे बागडोर थामे भी नहीं। मैं दुष्टों का दमन और शिष्टों का पालन कर रहा हूँ।

प्र०—डाके डालकर ?

भ०—सुनो, समझा कर कहता हूँ।

भवानी महाराज कहने लगे, प्रफुल्ल सुनने लगी।

ओजस्वी शब्दों से भवानी महाराज ने देश की दुर्दशा का वर्णन किया। ज़मींदारों के बड़े-बड़े अत्याचार सुनाये। कचहरी के कर्मचारी असामियों के घर-द्वार लूट लेते हैं। छिपाये धन की खोज में दरवाजे तोड़कर, फ़र्श खोदकर देखते हैं। पाने पर एक की जगह हज़ार ले जाते हैं। न पाने पर मारते हैं, बाँधते हैं, क़ैद करते हैं, जलाते हैं, कुल्हाड़ी मारते हैं, घर जला देते हैं, जानें ले लेते हैं। सिंहासन से शालिग्राम को फेंक देते हैं, बच्चे के पैर पकड़कर पटक देते हैं, जवान की छाती पर बाँस रखकर दलमसते

हैं, बुड्ढे की आँखों में चींटी, नाभि में कीड़ा भरकर बाँध रखते हैं। जवान औरत को कचहरी में ले जाकर सबके सामने नङ्गा करते हैं, मारते हैं, स्तन काट देते हैं, स्त्री-जाति का जो अन्तिम अपमान है, चरम विपत्ति, सबके सामने वह भी उसे उठानी पड़ती है। यह दर्दनाक मामला पुराने कवि की तरह बहुत सीधे-सादे तुले शब्दों में भवानी महाराज ने सुनाया, और कहा—इन दुराचारियों को मैं ही दण्ड देता हूँ। अनाथ दुर्बल की बाँह पकड़ता हूँ। किस तरह करता हूँ, यह तुम दो रोज़ साथ रहकर देख लोगी ?

प्रफुल्ल का हृदय प्रजा के दुःखों की कथा सुनकर गल गया था। उसने भवानी महाराज को सहस्र-सहस्र धन्यवाद दिये। कहा—मैं साथ जाऊँगी। अगर धन के ख़र्च के लिए मुझे अब अधिकार हो गया है, तो मैं कुछ धन भी साथ लेकर जाऊँगी। दीन-दुखियों को दे आऊँगी।

भ०—इस काम में दूकानदारी चाहिए, मैं कह रहा था। अगर मेरे साथ चलो तो कुछ-कुछ ठाट बनाना होगा। संन्यासिनी की सूरत में यह काम सिद्ध नहीं होगा।

प्र०—कर्म श्रीकृष्ण में अर्पित किया है। कर्म उनके हैं, मेरे नहीं। कर्म के निबाह में जो सुख और दुःख हैं, वे भी मेरे नहीं, उन्हीं के हैं। उनके कर्म के लिए जो कुछ करना होगा, करूँगी।

भवानी महाराज की मनोवाञ्छा पूरी हुई। वे जब डाका डालने के लिए अपने गिरोह के साथ निकले, प्रफुल्ल धन का घड़ा लेकर उनके साथ चली। निशि भी साथ हुई।

भवानी महाराज की अभिसन्धि जो भी हो, उन्हें एक तेज़ हथियार की ज़रूरत थी। इसी लिए प्रफुल्ल को पाँच साल तक शान पर चढ़ाकर उसे तेज़धार हथियार बना लिया था। मर्द होने पर ही अच्छा होता, लेकिन प्रफुल्ल की तरह का बहुत से गुणों का पूरा मर्द नहीं मिला। ख़ास तौर से इतना धन किसी पुरुष के नहीं। धन की धार बड़ी धार है। मगर भवानी महाराज ने एक ग़लती की। प्रफुल्ल के मन की तह तक पहुँचकर समझते तो अच्छा होता। कुछ हो, अब हम प्रफुल्ल को जीवन की तरङ्गों पर पाँच साल के लिए बहाकर और पाँच साल सोयें। प्रफुल्ल की दूसरी शिक्षा हुई है। कर्म की शिक्षा नहीं हुई। ये पाँच साल उसके कर्म की शिक्षा में बीतें।

दूसरा खण्ड

पहला परिच्छेद

पाँच और पाँच दस साल बीत गये। जिस दिन प्रफुल्ल को बाग्दी की बेटी कहकर हरवल्लभ ने खेद दिया था, उस दिन से दस साल बीत चुके हैं। ये दस साल हरवल्लभ राय के लिए बहुत अच्छे नहीं गये। देश की दुर्दशा की बात पहले कह चुके हैं। इजारेदार देवीसिंह का अत्याचार, इस पर डाकुओं का अत्याचार। एक दफ़ा हरवल्लभ के तअल्लुक़े से रुपये का चालान आ रहा था, डाकुओं ने उसे लूट लिया। उस दफ़ा देवीसिंह को मालगुज़ारी नहीं पहुँच सकी। देवीसिंह ने एक तअल्लुक़ा बेच लिया। हेस्टिङ्गस् साहब और गङ्गागोविन्दसिंह की कृपा से कुल सरकारी कर्मचारी देवीसिंह की आज्ञा के दास थे, ख़रीद-फ़रोख़्त के मामले में वह जो कुछ चाहता था, वही होता था। हरवल्लभ का दस हज़ार रुपये क़ीमत का तअल्लुक़ा ढाई सौ रुपये में देवीसिंह ने ख़ुद ख़रीद लिया। इससे बाक़ी लगान कुछ भी नहीं वसूल हुआ, बाक़ी ज्यों की त्यों लगी चली। देवीसिंह के पीड़न से, क़ैद होने की शंका से, हरवल्लभ ने एक दूसरी जायदाद रेहन करके क़र्ज़ चुकाया। इन सब कारणों से आमदनी काफ़ी घट गई। परन्तु ख़र्च में कुछ भी कमी नहीं हुई। रईसी चाल घटाई नहीं जा सकती। सभी आदमियों के

पेय और फल-मूल तैयार किये जाने लगे। मधुर अधर मधुर मुस-कान और मिस्सी से भर जाने लगे।

परन्तु जिसके लिए इतना उद्योग है, उसके मन में सुख नहीं। ब्रजेश्वर खुशियाँ मनाने ससुराल नहीं आये। पिता की गिरफ़्तारी का परवाना निकला है, बचने का उपाय नहीं। कोई रुपया क़र्ज़ नहीं देता। ससुर के रुपया है, ससुर चाहें तो उधार दे सकते हैं, इसलिए ब्रजेश्वर ससुर के पास आये हुए हैं।

ससुर ने कहा—बेटा, सुनो; हमारे जो रुपया है, वह तुम्हारे ही लिए है। लेकिन जितने दिन हमारे हाथ में है, उतने दिन है; तम्हारे बाप को देने पर रह थोड़े ही जायगा? वह महाजन के हाथ चला जायगा। इसलिए अपना धन आप क्यों बरबाद करना चाहते हो?

ब्रजेश्वर ने कहा—हो, मैं धन को हाथ नहीं फैलाए हुए। अपने बाप को बचाना मेरा पहला काम है।

ससुर ने रूखे स्वर से कहा—तुम्हारे बाप बचेंगे तो मेरी लड़की का इससे क्या होगा? मेरी लड़की के रुपये रहने से दुःख दूर होगा, ससुर के बचने से नहीं।

कड़ी बात से ब्रजेश्वर को बड़ी नाराज़गी हुई। उन्होंने कहा—तो आपकी लड़की रुपये लेकर रहे, मैं समझा, दामाद से आपको कोई सरोकार नहीं। मैं ज़िन्दगी भर के लिए बिदा होता हूँ।

इस बात से सागर के पिता ने दोनों आँखें लाल करके ब्रजेश्वर को बहुत तरह से धिक्कारा। ब्रजेश्वर ने कड़े-कड़े जवाब दिये। इसी

पर व्रजेश्वर अपना बोरिया-बँधना सँभालने लगे। सुनकर सागर के सर जैसे वज्र गिरा।

सागर की माँ ने दामाद को बुला भेजा। बहुत समझाया। लेकिन दामाद का ग़ुस्सा नहीं ठण्ढा पड़ा। इसके बाद सागर की बारी आई।

उन दिनों ससुराल में बहू के लिए पति से मिलना जितना दुश्वार था, मायके में उतना नहीं। सागर से एकान्त में व्रजेश्वर की मुलाक़ात हुई। सागर व्रजेश्वर के पैरों पड़ी। कहा—एक दिन और रहो, मैंने तो कोई अपराध नहीं किया।

व्रजेश्वर के तब बड़ा क्रोध था। ग़ुस्से में उन्होंने पैर खींच लिया। ग़ुस्से के वक्त शारीरिक क्रियाएँ बहुत तेज़ होती हैं, और हाथ-पैर का उठना भी मर्ज़ी के मुआफ़िक़ नहीं होता। एक करते, विकृति के कारण एक और हो जाता है। इसी कारण, और कुछ सागर की व्यस्तता के कारण, पैर हटाते प्रमाद हुआ। पैर कुछ ज़ोर से सागर की देह में लगा। सागर ने सोचा, पति ने ग़ुस्से से मुझे लात मारी। वह पति के पैर छोड़कर उठकर ग़ुस्से में आई नागिन की तरह खड़ी हो गई। कहा—क्या, तुमने मुझे लात मारी?

वास्तव में व्रजेश्वर की लात मारने की इच्छा न थी, यह कहने से ही कुल शक रफ़ा था। लेकिन एक तो ग़ुस्से का मिज़ाज, फिर सागर तेवर बदलकर खड़ी हो गई, इससे व्रजेश्वर का पारा चढ़ गया। कहा—अगर मारी ही हो; तुम—न हो—बड़े बाप की बेटी हो, लेकिन पैर मेरा है; तुम्हारे बड़े बाप ने भी एक दिन ये पैर पूजे थे।

गुस्से से सागर के होश जाते रहे। कहा--उन्होंने झख मारी। मैं इसका प्रायश्चित्त करूँगी।

ब्रज०--उलटकर लात मारोगी क्या ?

सागर--मैं उतनी अधम नहीं। परन्तु मैं अगर ब्राह्मण की लड़की हूँगी तो तुम मेरे पैर०--

सागर की बात खत्म होते न होते, पीछे के झरोखे से कोई कह उठी--मेरे पैर गोद में लेकर नौकर की तरह दबा दोगे।

सागर के मुँह में वैसी ही कोई बात आ रही थी। वह बिना सोचे-समझे--पीछे की तरफ़ फिरकर देखे, तमतमाई हुई, वही बात कह गई--मेरे पैर गोद में लेकर नौकर की तरह दबा दोगे।

ब्रजेश्वर भी क्रोध में सप्तम पर चढ़कर, किसी तरफ़ बिना देखे हुए, कह गया--मेरी भी यही बात। जब तक मैं तुम्हारे पैर न दबा दूँ, तुम्हारा मुँह नहीं देखूँगा। यदि मेरी यह प्रतिज्ञा भङ्ग हुई, तो मैं ब्राह्मण नहीं।

मारे गुस्से के दीवाने होकर, पैर पटकते हुए ब्रजेश्वर चले गये। सागर पैर फैलाकर रोने लगी। इसी समय सागर की एक दासी, ब्रजेश्वर के जाने के बाद, सागर की क्या हालत है, देखने के लिए उस कक्ष में गई। बहाने से यह वह काम करने लगी। सागर को तब याद आया, झरोखे से कोई बोली थी। सागर ने पूछा--तूने झरोखे से बातें की थीं ?

उसने कहा--कहाँ, नहीं।

सागर ने कहा--तब देख, झरोखे के पास कौन है ?

साक्षात् भगवती की तरह रूपवती और तेजस्विनी एक स्त्री ने कमरे के भीतर प्रवेश किया। कहा—झरोखे पर मैं थी।

सागर ने पूछा—तुम कौन हो जी ?

उस स्त्री ने पूछा—तुम लोग कोई मुझे पहचानतीं नहीं ?

सागर ने कहा—नहीं, तुम कौन हो ?

उस स्त्री ने जवाब दिया—मैं देवी चौधरानी हूँ।

दासी के हाथ में पानदान था, झनझनाकर गिर गया। वह आँ—आँ—आँ—आँ करके बैठ गई और रोने लगी। कमर की ढीली पड़ गई।

देवी चौधरानी ने उसकी ओर मुखातिब होते हुए कहा—चुप रह, हरामज़ादी, खड़ी हो।

दासी सिसकती हुई उठकर स्तम्भित-सी खड़ी रही। सागर की देह से भी पसीना निकलने लगा था। ज़बान से एक शब्द नहीं निकला। जो नाम उनके कानों में गया था, वह लड़का-बूढ़ा—किसने नहीं सुना था ? वह नाम बड़ा भयानक है।

लेकिन सागर फिर कुछ देर बाद हँस उठी। तब देवी चौधरानी भी हँसी।

—

तीसरा परिच्छेद

वर्षा का समय—चाँदनी रात। इस समय की चाँदनी बहुत उजली नहीं होती। परन्तु बड़ी मधुर होती है। कुछ अँधेरा लिये हुए—दुनिया स्वप्न भरे आवरण की तरह मालूम देती है। त्रिस्रोता नदी वर्षा के पानी से किनारे-किनारे तक भरी हुई। चाँद की किरणें तेज बहते हुए नदी के स्रोत पर, भँवरों पर, कदाचित् छोटी-छोटी तरङ्गों पर चमक रही हैं। कहीं पानी कुछ उबल रहा है, वहाँ कुछ चमचमाहट; कहीं रेती से टक्करें लेकर छोटी-छोटी तरंगें टूट रही हैं। वहाँ कुछ लपलपाना। किनारे पेड़ के पास पानी आकर लगा है, पेड़ की छाँह से वहाँ पानी पर बड़ा अँधेरा। अँधेरे में पेड़ के फूल, फल और पत्तों को बहाकर तीव्र स्रोत चला जा रहा है, किनारे छू-छूकर पानी कुछ तर-तर कल-कल पत-पत् शब्द कर रहा है—परन्तु वह अँधेरे-अँधेरे में। अँधेरे-अँधेरे में वह विशाल जलधारा समुद्र की खोज में चिड़िया की उड़ान उड़ रही है। किनारे-किनारे असंख्य कल-कल शब्द, आवर्तों का घोर गर्जन, रुकते बहाव की वैसी ही गरज; कुल मिलाकर एक गम्भीर गगनव्यापी शब्द उठ रहा है।

उसी बहाव के ऊपर, किनारे के पास ही, एक बजरा बँधा है। बजरे के बहुत दूर नहीं, एक बड़ी इमली की छाँह में, अँधेरे में, एक और नाव बँधी है। इसकी बात फिर कहेंगे, पहले बजरे की बात कहें। बजरा अनेक रङ्गों से चित्रित है; उसमें कितनी तरह

की मूर्तियाँ खिँची हुई। उसके पीतल के डंडों पर चाँदी क
चढ़ा हुआ। सिरे में मकर का मुँह। उस पर भी चाँदी का प
चढ़ा। सब जगह साफ़, सुथरी और स्तब्ध। मल्लाह एक किनारे
बाँसों पर पाल ओढ़कर लेटे हैं। किसी के जगे रहने का चिह्न नहीं।
सिर्फ़ बजरे की छत पर एक आदमी है। अपूर्व दृश्य है।

छत पर एक छोटा ग़लीचा बिछा हुआ है। ग़लीचा दो अंगुल
मोटा है। उस पर तरह-तरह के नक़्शे कटे। ग़लीचे पर एक स्त्री
हुई है। उसकी उम्र का पता लगाना मुश्किल है।
कम उम्र की वैसी भरी-पूरी देह नहीं देख
साल के ऊपर यौवन का वैसा
जो कुछ हो, यह
सुन्दरी कृशा
वस्तुतः इसके
त्रिस्रोता डि
किनारे-कि
देह ऊँची
वर्षा का
है, ज़रा
हुआ
परन्तु
वह ला
है, फि

...नी है। उसी नदी की तरह वह सुन्दरी भी सजी हुई है। ...ढाके के कपड़ों की वैसी इज़्ज़त नहीं, परन्तु सौ साल पहले कपड़े भी अच्छे तैयार होते थे, उनका उचित आदर भी था। इसके पहनावे में एक बारीक साफ़ ढाके की साड़ी है जिस पर ज़री के फूल हैं। उसके भीतर हीरे-मोती-जड़ी चोली चमक रही है। हीरे, पन्ने, मोती और सोने से वह भरी देह सजी हुई है। ...किरणों से चमचमाती हुई। नदी के पानी पर जैसी ... है, इस देह पर भी वैसी ही। ज्योत्स्ना से पुलकित ... तरह वह शुभ्र वस्त्र है। और नदी के ...नी हैं, शुभ्र वस्त्र के बीच-बीच ... वनों की छाया है, ...अङ्गों पर पड़ ...-गुच्छे केश ...की मसृण ...ने आकाश ...है।

...जी रूप- ...उसका ...पानी ...लंकारों ...से तर ...बोल

उसी तरह खेल रहे हैं। झन् झन् झनन्-झनन्-झन् द्रिम द्रिम, वीणा में क्या बज रहा था, मैं नहीं कह सकता। वीणा कभी रोती है, कभी जोश में आ जाती है; कभी नाचती है, कभी आदर करती है, कभी गरज उठती है, फिर बजकर मन्द मन्द मुस्कराती है। झिंझोटी, खम्माच, सिन्ध—कितने मीठे राग बजे; केदार, हम्मीर, बिहाग—कितने गम्भीर; कान्हरा, सहाना, बागेश्वरी—कितने प्रभावशाली। नाद, कुसुमों की माला की तरह, नदी के स्रोत पर बह गया। इसके बाद दो-एक चूड़ियाँ चढ़ा-उतारकर एकाएक नये उत्साह से गर्दन उठाकर उस विद्यावती ने झनन्-झनन् करके मिजराब की चोटें कीं। कानों की ढारें झूम उठीं। सर के, साँप की तरह के, बालों के गुच्छे हिले। वीणा में नट बजने लगा। तब जो लोग पाल ओढ़कर एक किनारे चुपचाप सोते-से पड़े थे, उनमें से एक आदमी उठकर चुपचाप सुन्दरी के पास आकर खड़ा हुआ।

यह आदमी लम्बा और तगड़े बदन का है। बड़ी बड़ी मूछें और गलपट्टे हैं। गले में जनेऊ। वह पास आया। पूछा—क्या हुआ है?

उस स्त्री ने कहा—देख नहीं पा रहे हो?

पुरुष ने कहा—कुछ भी नहीं। आ रहा है क्या?

गलीचे पर एक छोटी दूरबीन पड़ी थी। दूरबीन का तब भारतवर्ष में नया-नया चालान आया था। दूरबीन उठाकर सुन्दरी ने उस आदमी के हाथ में दी, कुछ कहा नहीं। उसने दूरबीन आँखों में लगाकर नदी के चारों ओर निरीक्षक की तरह देखा। अन्त

में एक जगह एक और बजरा देखकर कहा--देखा है--मोड़ के सिरे पर वह क्या है ?

उत्तर--इस नदी में आजकल और किसी बजरे के आने की सम्भावना नहीं है।

पुरुष फिर दूरबीन से देखने लगा।

युवती ने वीणा बजाते हुए कहा--रङ्गराज !

रङ्गराज ने उत्तर दिया--आज्ञा !

"क्या देखते हो ?"

"कितने आदमी हैं, यह देख रहा हूँ।"

"कितने आदमी हैं ?"

"अन्दाज ठीक नहीं लड़ रहा है। ज्यादा नहीं। खोलूँ ?"

"खोलो किश्ती। अँधेरे-अँधेरे चुपचाप उड़ जाओ।" तब रङ्गराज ने पुकारकर कहा--किश्ती खोलो।

चौथा परिच्छेद

पहले कहा है कि बजरे के पास इमली की छाँह में एक और नाव अँधेरे में छिपी थी। वह किश्ती थी, साठ हाथ लम्बी और तीन हाथ से ज्यादा चौड़ी नहीं। उस पर प्राय: पचास आदमी सटे हुए सो रहे थे। रङ्गराज का संकेत सुनते ही वे पचासों आदमी एक साथ उठकर बैठ गये। बाँसों का पाटा उठाकर सबने एक-एक लाठी और एक-एक छोटी ढाल नीचे से निकाली। हथियार किसी ने हाथ में नहीं लिया, सबने अपने पास बाँस के पाटे पर लगा लिया। फिर एक-एक डाँड़ हाथ में लेकर बैठे।

चुपचाप किश्ती खोलकर उन लोगों ने बजरे से उसे भिड़ाया। रङ्गराज पाँचों हथियार बाँधकर उस पर चढ़ा। उस समय युवती ने उसे बुलाकर कहा--रङ्गराज, पहले जो कुछ कह चुकी हूँ, जैसे याद रहे।

"याद है" कहकर रङ्गराज किश्ती पर गया। चुपचाप किश्ती किनारे किनारे उड़ चली। इधर जिस बजरे को रङ्गराज ने दूरबीन से देखा था, वह तेज़ बहाव में तीर की तरह आ रहा था। किश्ती रेक्खा है ज्यादा डाँड़ नहीं लगाना पड़ा। बजरा नज़दीक आया अंग्रेज ने किनारा छोड़कर बजरे की तरफ़ रुख़ किया। पचास जैसे वीर रहे थे, लेकिन आवाज़ नहीं आ रही थी।

इधर बजरे की छत पर आठ हिन्दुस्तानी रखवाले थे। इतने आदमी साथ लिये बग़ैर तब के दिनों में कोई रात को नाव खोलने की हिम्मत नहीं करता था। आठ आदमियों में दो आदमी हथियार-बन्द होकर, सर पर लाल पगड़ी बाँधे छत पर बैठे थे; बाक़ी छः आदमी मधुर दखिनाव और चाँदनी में काली दाढ़ी बिखेरकर सुख की नींद सो रहे थे। जो पहरे पर थे, उनमें एक ने देखा—किश्ती बजरे की तरफ़ आ रही है। बाक़ायदा उसने आवाज़ लगाई—किश्ती दूर रक्खो।

रङ्गराज ने जवाब दिया—तुम्हें ज़रूरत हो, तुम हट जाओ।

पहरेदार ने देखा, मामला टेढ़ा पड़ रहा है। डराने के इरादे से उसने बन्दूक़ का झूठा फ़ायर किया। रङ्गराज समझ गया कि झूठी आवाज़ है। हँसकर कहा—क्यों पाँड़े जी, एक छर्रा भी नहीं रहा? उधार दूँ?

यह कहकर उस पहरेदार के सर का निशाना रङ्गराज ने बन्दूक़ उठाकर साधा। इसके बाद बन्दूक़ उतारकर कहा—"अब तुम्हारी जान नहीं लूँगा। सिर्फ़ तुम्हारी लाल पगड़ी उड़ाऊँगा।" यह कहते-कहते बन्दूक़ रखकर तीर और धनुष उठाकर ज़ोर से एक तीर मारा। पहरेदार के सर की लाल पगड़ी उड़ गई। वह राम-राम जपने लगा।

देखते-देखते किश्ती बजरे के पीछे आकर भिड़ी। दस-बारह आदमी किश्ती से हथियार-समेत बजरे पर जो छः हिन्दुस्तानी सो रहे थे, बन्दूक़ की आवाज़ से उन

खुली तो सही, मगर नींद के मारे हथियार टटोलते ही उनका वक्त तमाम हुआ। हमला करनेवालों ने जल्दबाज़ी की; बात की बात में उन्हें बाँध लिया। जो दो पहले से जग रहे थे उन्होंने लड़ाई की, लेकिन थोड़ी देर के लिए। हमला करनेवाले संख्या में अधिक थे, जल्द उन्हें परास्त और निरस्त्र करके बाँध लिया। फिर किश्ती के आदमी बजरे के भीतर घुसने की कोशिश करने लगे। बजरे का दरवाज़ा बन्द था।

भीतर व्रजेश्वर थे। वे ससुराल से घर जा रहे थे। रास्ते में यह विपत्ति हुई। यह सिर्फ़ उनकी हिम्मत का फल है। दूसरा कोई हिम्मत करके रात को बजरा न खोलता।

रङ्गराज ने दरवाज़े पर धक्के मारते हुए कहा—जनाब, दरवाज़ा खोलिए।

हाल ही नींद से जगे व्रजेश्वर ने भीतर से आवाज़ दी—कौन हो? इतना ग़ुल किस लिए है?

रङ्गराज ने कहा—गुल कुछ भी नहीं; बजरे पर डाका पड़ा है।

व्रजेश्वर कुछ देर तक स्तब्ध रहे, फिर पुकारने लगे—पाँड़े! तिवारी! रामसिंह!

रामसिंह ने छत पर से कहा—धर्मावतार! सालों ने सबको बाँध रक्खा है।

व्रजेश्वर ने कुछ हँसकर कहा—सुनकर बहुत दुःखित हूँ। तुम्हारे जैसे वीर पुरुषों को दाल-रोटी खाने को न छोड़कर बाँध डाला है!

डाकुओं की यह बड़ी नासमझी है ! लेकिन चिन्ता न करो--कल से दाल-रोटी की रसद बढ़ा दूँगा।

सुनकर रङ्गराज भी मुस्कराया। कहा—मेरा भी यही मत है। अब दरवाजा खोलिएगा शायद ?

ब्रजेश्वर ने पूछा--तुम कौन हो ?

रङ्गराज--मैं सिर्फ एक डाकू हूँ। दवार खोलिए, आपसे यही प्रार्थना है।

"क्यों दवार खोलूँ ?"

रङ्गराज--आपका सर्वस्व हम लूटेंगे।

ब्रजेश्वर ने कहा—क्यों ? मुझे क्या हिन्दुस्तानी गड़ेरिया समझ लिया है ? मेरे हाथ में दोनाली बन्दूक भरी हुई है। जो पहले कमरे के अन्दर पैठेगा, जरूर उसकी जान लूँगा।

रङ्गराज--हम एक आदमी नहीं पैठेंगे। कितने आदमियों की आप जान लेंगे ? आप भी ब्राह्मण हैं, मैं भी ब्राह्मण हूँ। एक तरफ ब्रह्महत्या होगी। व्यर्थ ब्रह्महत्या की क्या जरूरत ?

ब्रजेश्वर ने कहा—यह पाप, न हो, मैं ही अङ्गीकृत करूँगा।

यह बात खत्म होते न होते चरचर आवाज हुई। बजरे की बगल की एक खिड़की तोड़कर एक डाकू कमरे के भीतर पैठा। यह देखकर ब्रजेश्वर ने हाथ की बन्दूक घुमाकर उसके सर पर मारी। डाकू मूर्छित होकर गिर गया। इसी समय रङ्गराज ने बाहर के दरवाजे पर दो मर्तबे जोर से लात मारी। दरवाजा टूट गया। रङ्गराज कमरे के भीतर पैठा। ब्रजेश्वर फिर बन्दूक घुमाकर रङ्गराज

पर निशाना साधने लगे कि रङ्गराज ने बन्दूक़ छीन ली। दोनों बराबर बलवाले थे, लेकिन रङ्गराज कुछ अधिक फ़ुर्तीला था। व्रजेश्वर अच्छी तरह बन्दूक़ पकड़े-पकड़े तब तक रङ्गराज ने छीन ली। व्रजेश्वर ने तब दृढ़ मुट्ठी बाँधकर पूरे ज़ोर से रङ्गराज के सर पर घूँसा मारा। वार बैठने से पहले रङ्गराज ने घूँसा पकड़ लिया। बजरे के एक तरफ़ बहुत से अस्त्र लटक रहे थे। इसी बीच तुर्त-फुर्त व्रजेश्वर ने उनमें से एक तेज़ तलवार खींच ली और हँसकर कहा—"देखो महाराज, ब्रह्महत्या से मुझे बड़ा डर नहीं।" यह कहकर रङ्गराज पर चलाने के लिए व्रजेश्वर ने तलवार उठाई। इसी समय और चार-पाँच डाकू खुले दरवाजे से भीतर आकर उस पर टूट पड़े। उठाई तलवार हाथ से छीन ली। दो आदमियों ने दोनों हाथ चाँपकर पकड़ लिये। एक ने रस्सी लेकर व्रजेश्वर से पूछा—क्या बाँधना होगा?

तब व्रजेश्वर ने कहा—बाँधो मत! मैं हार स्वीकार करता हूँ। तुम क्या चाहते हो, कहो, मैं देता हूँ।

रङ्गराज ने कहा—आपके जो कुछ है, सब ले जायँगे। कुछ छोड़ देते, लेकिन जैसा घूँसा उठाया था, मेरे सर पर लगने पर सर फूट जाता। एक पैसा भी अब छोड़ा नहीं जायगा।

"जो कुछ बजरे में हो, सब ले जाओ, अब आपत्ति नहीं करूँगा।" व्रजेश्वर ने कहा।

व्रजेश्वर के यह कहने के पहले डाकू माल-असबाब बजरे से किश्ती पर रखने लगे थे। अब तक लगभग पचीस आदमी

बजरे पर चढ़ आये थे। चीज़ असबाब बजरे में कोई ख़ास नहीं रह गया था। सिर्फ़ पहनने की धोती, पूजा की सामग्री, ऐसी ही रह गई थीं। वे सब वस्तुएँ छन भर में उन लोगों ने किश्ती पर उठा लीं। तब आरोही ने रङ्गराज से कहा—सब चीजें तो ले लीं हैं। अब क्यों परेशान करते हो? अब अपनी जगह जाओ।

रङ्गराज ने जवाब दिया—जा रहे हैं। लेकिन आपको भी हमारे साथ चलना होगा।

ब्र०—यह क्या? मैं कहाँ जाऊँगा?

रङ्ग—हमारी रानी के पास।

ब्र०—तुम्हारी रानी और कौन हैं?

रङ्ग—हमारी राजरानी।

ब्र०—वे कौन हैं? डाकुओं की राजरानी तो कभी नहीं सुना।

रङ्ग—देवी रानी का नाम कभी नहीं सुना?

ब्र०—अच्छा! तुम लोग देवी चौधरानी के दल के हो?

रङ्ग—दल-बल क्या है? हम लोग रानी जी के कारगुज़ार हैं।

ब्र०—जैसी रानी, वैसे ही कारगुज़ार! लेकिन मुझे रानी के दर्शनों के लिए क्यों जाना होगा? मुझे क़ैद रखकर कुछ वसूल करोगे, यह इच्छा है?

रङ्ग—फलतः। बजरे में तो कुछ मिला नहीं। आपको रोक रखने पर अगर कुछ प्राप्त हो।

ब्र०—मेरी भी चलने की इच्छा हो रही है। सुना है, तुम्हारी राजरानी एक देखने की चीज़ हैं। कहते हैं—वे जवान हैं, सही है?

रङ्ग—वे हमारी माँ हैं। बच्चे मा की उम्र का हिसाब नहीं रखते।

ब्र०—सुना है, बड़ी रूपवती हैं।

रङ्ग—हमारी माँ भगवती जैसी हैं।

"तो चलो, भगवती के दर्शनों के लिए चला जाय।" यह कहकर ब्रजेश्वर रङ्गराज के साथ कमरे के बाहर आये। देखा कि बजरे के माझी और मल्लाह मारे डर के पानी में कूदकर बजरे की रस्सियाँ पकड़े हुए उतरा रहे हैं। ब्रजेश्वर ने उनसे कहा—अब तुम लोग बजरे पर चढ़ सकते हो, डरवाली बात नहीं रही। चढ़कर खुदा का नाम लो। तुम्हारी जान, इज्जत और दौलत बच गई! तुम लोग बड़े समझदार निकले।

तब माझी लोग एक एक करके बजरे पर चढ़ने लगे। ब्रजेश्वर ने रङ्गराज से पूछा—अब क्या मैं अपने दरबानों के बन्धन खोल दे सकता हूँ?

रङ्गराज ने कहा—हाँ, आपत्ति नहीं। वे अगर हाथ खुलने पर हम पर टूटेंगे, तो हम आपका सर धड़ से जुदा कर देंगे। यह बात उन्हें समझा दीजिए।

ब्रजेश्वर ने दरबानों को वैसा ही समझा दिया। और भरोसा दिया कि उन लोगों ने जैसी वीरता दिखलाई है, इससे जल्द उनकी रसद बढ़ा दी जायगी। ब्रजेश्वर ने नौकरों को आज्ञा दी कि निश्चिन्त होकर तुम लोग यहीं बजरा लेकर रहो। मैं जल्द लौटा आ रहा हूँ। अब वे रङ्गराज के साथ किश्ती पर गये। किश्ती के मल्लाहों ने "देवीरानी की जय" की आवाज़ लगाई। किश्ती तेज़ रफ़्तार से बढ़ चली।

पाँचवाँ परिच्छेद

जाते जाते व्रजेश्वर ने रङ्गराज से पूछा—मुझे कितनी दूर ले जाओगे ?—तुम्हारी रानी जी कहाँ रहती हैं ?

रङ्ग—वह बजरा देख रहे हैं न, वह उन्हीं का बजरा है।

व्रज—वह बजरा ? मैंने सोचा था, वह अँगरेजों का जहाज़ है; रङ्गपुर लूटने आया है। ख़ैर, इतना बड़ा बजरा क्यों ?

रङ्ग—रानी को रानी की तरह रहना पड़ता है। उसमें सात कमरे हैं।

व्रज—इतने कमरों में कौन रहता है ?

रङ्ग—एक में रानी का दरबार लगता है। एक रानी का शयनागार है। एक में नौकरानियाँ रहती हैं। एक में नहाती हैं। एक में भोजन पकता है। एक में जेल है। शायद आपको आज उसी कमरे में रहना पड़ेगा।

इस तरह की बातचीत हो रही थी कि किश्ती बजरे के बाज़ू से आकर भिड़ी। देवी रानी उर्फ़ देवी चौधरानी अब और छत पर नहीं हैं। जब तक उनके आदमी डाका डाल रहे थे, देवी तब तक छत पर बैठी चाँदनी में वीणा बजा रही थीं। उस समय बाजा बहुत अच्छा नहीं बज रहा था,—बेसुर, बेताला, क्या बजाते क्या बज रहा था—देवी अन्यमनस्क हो रही थीं। इसके बाद ज्यों ही किश्ती लौटी, देवी उतरकर कमरे के भीतर गईं।

इधर रङ्गराज किश्ती से बजरे पर चढ़े, दरवाज़े के पास आकर खड़े हुए, आवाज़ लगाई, "रानी जी की जय।" द्वार पर रेशमी पर्दा पड़ा हुआ है। भीतर देख नहीं पड़ता। भीतर से देवी ने पूछा—क्या खबर है?

रङ्ग०—सब कुशल है।

देवी—तुम्हारा कोई ज़ख्मी हुआ है?

रङ्ग०—कोई नहीं।

देवी—उनके किसी का खून हुआ है?

रङ्ग०—किसी का नहीं। आपकी आज्ञा के अनुसार काम हुआ है।

देवी—उनका कोई ज़ख्मी हुआ है?

रङ्ग०—दो-एक हिन्दुस्तानियों को एक-आध खरोंचा लग गया है, काँटा लगने की तरह।

देवी—माल?

रङ्ग०—सब ले आया हूँ। माल वैसा कुछ नहीं था।

देवी—बाबू?

रङ्ग०—बाबू को पकड़ लाया हूँ।

देवी—हाज़िर करो।

तब रङ्गराज ने व्रजेश्वर को इशारा किया। व्रजेश्वर किश्ती से उठकर बजरे के दरवाज़े के पास आकर खड़े हुए।

देवी ने पूछा—आप कौन हैं?

देवी को जैसे स्वरभङ्ग हो रहा हो—आवाज़ वैसी साफ़ नहीं निकल रही है।

व्रजेश्वर जिस तरह का आदमी है, पाठक शायद अब तक समझ गये हैं। डर किसे कहते हैं, यह वह बचपन से ही नहीं जानते। जिस देवी चौधरानी के नाम से उत्तर बङ्गाल काँप रहा था, उसके पास आकर व्रजेश्वर को हँसी लगने लगी। मन में सोचा, स्त्री-जाति से मर्द डरता है, ऐसा तो कभी नहीं सुना। स्त्री तो मर्द की बाँदी है। हँसते हुए व्रजेश्वर ने देवी की बात का जवाब दिया—परिचय से क्या होगा? मेरे धन से आप लोगों का सम्बन्ध है, वह पा चुकी हैं। नाम से तो रुपये नहीं होंगे।

देवी—ज़रूर होंगे। आप किस क़ीमत के आदमी हैं, यह मालूम करने पर रुपये का ठिकाना होगा। (फिर भी गला पकड़ा-पकड़ी है।)

व्रज—इसी लिए क्या मुझे पकड़ मँगाया है?

देवी—नहीं तो आपको हम लोग न ले आते।

देवी पर्दे की आड़ में थीं। किसी ने देखा नहीं, ये बातें कहते समय देवी ने आँखें पोंछीं।

व्रज—मैं अगर कहूँ कि मेरा नाम दुखीराम चक्रवर्ती है तो क्या आपको विश्वास होगा?

देवी—नहीं।

व्रज—फिर पूछने की क्या ज़रूरत है?

देवी—आप कहते हैं या नहीं, देखने के लिए।

व्रज—मेरा नाम कृष्णगोविन्द घोषाल है।

देवी—नहीं।

ब्रज--दयाराम बख्शी।

देवी--यह भी नहीं।

ब्रज--ब्रजेश्वर राय।

देवी--हो सकता है।

इसी समय देवी के पास एक औरत और चुपचाप आकर बैठी। कहा, गला बिलकुल पकड़ जो गया है?

देवी के आँसू और नहीं रुके। वर्षाकाल के खिले फूल के भीतर जैसे पानी भरा रहता है, डाल हिलाने पर ही पानी टप-टप करके गिर जाता है, देवी की आँखों में उसी तरह आँसू भरे थे, डाल हिलाते ही झर-झर करके गिर गये। देवी ने तब उस औरत से कानोंकान कहा--मैं अब यह तमाशा नहीं कर सकती। तू बात-चीत कर। सब जानती तो है?

यह कहकर देवी उस कमरे से उठकर दूसरे कमरे में गईं। वह स्त्री देवी के आसन पर बैठकर ब्रजेश्वर से बात-चीत करने लगी। इस औरत से पाठकों का परिचय है। ये वही बिना ब्राह्मण की ब्राह्मणी हैं--निशि देवी।

निशि ने कहा--अब तुमने ठीक कहा, तुम्हारा नाम ब्रजेश्वर राय है।

ब्रजेश्वर को कुछ धोखा हुआ। पर्दे की आड़ से कुछ देख नहीं पा रहे थे--परन्तु आवाज़ से सन्देह हो रहा था। जो बातें कर रही थी, यह शायद वह नहीं। उसकी आवाज बड़ी मीठी मीठी मालूम दे रही थी। यह शायद उतनी मीठी नहीं।

कुछ हो, बात के जवाब में ब्रजेश्वर ने कहा--अगर मेरा परिचय आप जानती हैं तो इसी वक्त दर ठीक करली जिए, मैं अपनी जगह चला जाऊँ। किस क़ीमत पर मुझे छोड़िएगा ?

निशि--एक फूटी कौड़ी पर। साथ है ? अगर हो तो देकर चले जाइए।

ब्रज--अभी तो पास नहीं है।

निशि--बजरे से लाकर दीजिए।

ब्रज--बजरे में जो कुछ था, वह सब आपके अनुचर ले आये हैं। अब एक फूटी कौड़ी भी नहीं है।

निशि--माँझियों से उधार ले आइए।

ब्रज--माझी भी फूटी कौड़ी नहीं रखते।

निशि--तो जितने दिन तक अपनी सही-सही क़ीमत चुका न पायें, उतने दिन क़ैद रहिए।

इसके बाद ब्रजेश्वर ने सुना, कमरे के भीतर एक और कोई--आवाज़ से मालूम हुआ वह भी औरत है--देवी से कह रही है कि रानी जी, अगर एक फूटी कौड़ी ही इस आदमी की क़ीमत हो, तो मैं एक फूटी कौड़ी देती हूँ। मेरे हाथ इसे बेच दीजिए।

ब्रजेश्वर ने सुना, रानी ने जवाब दिया--कोई मुज़ायक़ा नहीं। लेकिन इस आदमी को लेकर तुम करोगी क्या ? ब्राह्मण है, पानी भरने और लकड़ी काटने के काम नहीं आयेगा।

ब्रजेश्वर ने जवाब भी सुना, औरत ने कहा--मेरे रसोइया नहीं है। मेरा भोजन पकायेगा।

तब निशि ने व्रजेश्वर को सम्बोधन करके कहा--सुना आपने ? आप बिक गये। मुझे फूटी कौड़ी मिल गई। जिसने आपको खरीदा, आप उसके साथ जाइए, रसोई करनी होगी।

व्रजेश्वर ने पूछा--कहाँ हैं वे ?

निशि--वे स्त्री हैं, बाहर नहीं निकलेंगी, आप भीतर आइए।

छठा परिच्छेद

हुक्म पाकर पर्दा हटाकर व्रजेश्वर कमरे के भीतर आये। आकर जो कुछ देखा, उससे विस्मय हुआ। कमरे की काठ की दीवारों पर तस्वीरें खिंची हुई हैं। जैसे क्वार में दशभुजा की पूजा की इच्छा से भक्त प्रतिमा की छत चित्रित कराते हैं, ये वैसी ही तस्वीरें हैं। शुम्भ-निशुम्भ-युद्ध; महिषासुर की लड़ाई; दश अवतार; अष्ट-नायिका; सप्त मातृका; दश-महाविद्या; कैलास; वृन्दावन; लंका; इन्द्रालय; नव-नारी-कुञ्जर; वस्त्र-हरण; सब चित्रित। उसी कमरे में चार अंगुल मोटा ग़लीचा बिछा हुआ, उस पर भी कितने चित्र। उस पर कितनी ऊँची मसनद—मख़मल के कामदार बिछौने, तीन ओर वैसे ही तकिये। सोने के इत्रदान, उसी के गुलाबपाश; सोने का पान का डब्बा, सोने की फूलदानियाँ, उन पर राशि-राशि सुगन्ध-पुष्प; सोने की फ़र्शी; वैसी ही ज़र्रीन पेचनाल; सोने की नली में मोती के गुच्छे लटक रहे हैं। कस्तूरी पड़ा ख़मीरा चढ़ा हुआ है। दोनों तरफ़ दो चाँदी के झाड़, उनमें कितने ही ख़ुशबू-तेल के दिये चाँदी की परियों के सर पर जल रहे हैं। ऊपर की छत से एक छोटा दिया सोने की ज़ञ्जीर से बँधा लटक रहा है। चारों कोनों में चाँदी का चार मूर्तियाँ, चार बत्तियाँ हाथ में लिये हुए हैं। मसनद पर एक स्त्री लेटी हुई है। उसके मुँह पर एक बहुत बारीक़ ज़र्रीन बूटेदार ढाके का रूमाल पड़ा है। मुँह अच्छी तरह

नज़र नहीं आ रहा है। लेकिन तपे सोने-सा गोरा रङ्ग और काले घुँघराले बाल समझ में आ रहे हैं। कानों के गहने कपड़े के भीतर से झलक रहे हैं। उनसे बढ़कर बड़ी-बड़ी आँखों की तेज़ चितवन झुलस रही है। स्त्री लेटी हुई है, सोई नहीं।

दरबारवाले कमरे में पैर रखकर व्रजेश्वर ने लेटी हुई सुन्दरी को देखकर पूछा--रानी जी को क्या कहकर आशीर्वाद दूँ ?

सुन्दरी ने उत्तर दिया--मैं रानी जी नहीं।

व्रजेश्वर ने देखा, अब तक वह जिससे बातें कर रहा था, यह उसके गले की आवाज़ नहीं। लेकिन यह उसकी आवाज़ हो भी सकती है। क्योंकि अच्छी तरह समझ में आ रहा है कि स्त्री आवाज़ बदल कर बातें कर रही है। मन में सोचा, शायद देवी चौधरानी हर तरह की आवाज़ निकाल सकती है, मायाविनी है। इतना कुहक न जानती तो औरत होकर डाका डालती ? खुलकर पूछा--अभी-अभी उनसे बातें कर रहा था, वे कहाँ हैं ?

सुन्दरी ने कहा--तुम्हें आने की आज्ञा देकर वे लेटने गई हैं। रानी से तुम्हें क्या ज़रूरत है ?

व्रज—तुम कौन हो ?

सुन्दरी—तुम्हारी मालकिन।

"मेरी मालकिन ?"

सुन्दरी—याद नहीं, अभी तुम्हें एक फूटी कौड़ी देकर मैंने ख़रीदा है ?

व्रज—हाँ, ठीक है। तो तुम्हें क्या कहकर आशीर्वाद दूँ ?

सुन्दरी—आशीर्वाद की तरहें हैं क्या ?

व्रज—स्त्रियों के लिए हैं। सुहागिन को एक तरह आशीर्वाद दिया जाता है, विधवा को दूसरी तरह। पुत्रवती को—

सुन्दरी—मुझे 'जल्द मर' कहकर आशीर्वाद दो।

व्रज—यह आशीर्वाद मैं किसी को नहीं देता। तुम्हारी एक सौ तीन साल की उम्र हो।

सुन्दरी—मेरी उम्र पच्चीस साल की है। अठहत्तर साल तुम मेरा भोजन पकाओगे ?

व्रज—पहले एक दिन तो पकाऊँ। खा सकीं तो न हो अठहत्तर साल तक पकाऊँगा।

सुन्दरी—तो बैठो। कैसा पका सकते हो, बतलाओ।

व्रजेश्वर तब कोमल गलीचे पर बैठा। सुन्दरी ने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ?

व्रज—यह तो तुम सब लोग जानती हो देखता हूँ। मेरा नाम व्रजेश्वर है। तुम्हारा नाम क्या है ? आवाज़ इतनी मोटी करके क्यों बातें कर रही हो ? तुम क्या पहचाने हुए आदमियों में हो ?

सुन्दरी—मैं तुम्हारी मालकिन हूँ। मुझसे आप महाशया और जी कहकर बातचीत करोगे।

व्रज—जी, अच्छा; वैसा ही होगा। आपका नाम ?

सुन्दरी—मेरा नाम पाँचकौड़ी है। मगर तुम मेरे नौकर हो, नाम नहीं ले सकोगे, बल्कि कहो तो मैं भी तुम्हें नाम लेकर नहीं पुकारूँगी।

व्रज—तो क्या कहकर बुलाइएगा तो मैं जी कहूँगा ?

पाँचकौड़ी—मैं तुम्हें रामधन कहकर पुकारूँगी। तुम मुझे मालकिन जी कहना। अब अपना परिचय दो, मकान कहाँ है ?

व्रज—एक कौड़ी में खरीदा है, इतने परिचय की कौन सी जरूरत ?

पाँचकौड़ी—अच्छा, वह बात न भी कही तुमने। रङ्गराज को पूछने से मालूम हो जायगा। तुम कौन ब्राह्मण हो, राढ़ी हो, वारेन्द्र या वैदिक ?

व्रज—पकाया भोजन तो कीजिएगा, जो भी होऊँ।

पाँचकौड़ी—तुम अगर मेरी अपनी पाँति के न हुए तो तुम्हें दूसरा काम दूँगी।

व्रज—दूसरा कौन सा काम ?

पाँच०—पानी भरोगे, लकड़ी काटोगे, काम की कमी क्या है ?

व्रज—मैं राढ़ी हूँ।

पाँच०—तो मेरा पानी भरना, लकड़ी काटना होगा! मैं वारेन्द्र हूँ। तुम राढ़ी कुलीन हो या वंशज ?

व्रज—ये बातें तो विवाह-सम्बन्ध के लिए जरूरी होती हैं। कोई सम्बन्ध जुटेगा क्या ? मैं विवाहित हूँ।

पाँच०—विवाहित हो ? कितनी स्त्रियाँ हैं ?

व्रज—पानी भरना होगा, पानी भरूँगा, इतना परिचय नहीं दे सकूँगा।

तब पाँचकौड़ी ने देवी रानी को पुकार कर कहा—रानी जी, ये ब्राह्मण-देवता कहना नहीं मान रहे हैं। बात का जवाब नहीं दे रहे हैं।

दूसरी तरफ़ से निशि ने जवाब दिया—बेंत लगाओ।

तब देवी की एक सेविका लपलपाता हुआ एक पतला बेंत पाँचकौड़ी के बिछौने पर पट्ट-से डालकर चली गई। बेंत पाकर ढाके के रूमाल के भीतर मधुर अधर से चारु दन्तपंक्ति दबाकर कोई दो दफ़े बिछौने पर पाँचकौड़ी ने बेंत पटका। ब्रजेश्वर से कहा—देखा है ?

ब्रजेश्वर हँसा। कहा—आप लोग सब कुछ कर सकती हैं। क्या कहना होगा, कह रहा हूँ।

पाँचकौड़ी—तुम्हारा परिचय नहीं चाहिए। परिचय लेकर क्या होगा ? तुम्हारा पकाया तो खाऊँगी नहीं। तुम और कौन सा काम कर सकते हो, कहो।

ब्रज—आज्ञा कीजिए।

पाँच०—पानी भरना जानते हो ?

ब्रज—नहीं।

पाँच०—लकड़ी काटना जानते हो ?

ब्रज—नहीं।

पाँच०—बाज़ार करना आता है ?

ब्रज—मोटे तौर पर।

पाँच०—मोटे तौर पर से नहीं चलेगा। हवा कर सकते हो ?

व्रज०—कर सकता हूँ।

पाँच—अच्छा, यह चँवर लो, हवा करो।

व्रजेश्वर चँवर लेकर झलने लगा। पाँचकौड़ी ने कहा—अच्छा, एक काम जानते हो? पैर दबाना?

व्रजेश्वर के बुरे भाग थे। पाँचकौड़ी को वाचाल देखकर वे एक छोटे तौर का मज़ाक़ करने चले। उनका यह इरादा भी था कि इन डाकू-नेत्रियों को किसी तरह ख़ुश करके मुक्त होंगे। इस विचार से पाँचकौड़ी की बात के जवाब में कहा—तुम्हारी जैसी सुन्दरी के पैर दबाऊँगा, यह तो भाग्य की—

"तो एक दफ़ा दबाओ न" कहकर पाँचकौड़ी ने महावर-रचा पैर व्रजेश्वर की जाँघ पर चढ़ा दिया।

व्रजेश्वर लाचार हो गये। आप ही पैर दबाने का न्योता लिया है—क्या करें! लिहाज़ा दोनों हाथों से पैर दबाने लगे। मन में सोचने लगे, यह काम अच्छा नहीं हो रहा है, इसका प्रायश्चित्त करना होगा। इस वक्त छुटकारा मिले तो बचूँ।

इस समय दुष्टा पाँचकौड़ी ने पुकारा—रानीजी, एक दफ़ा इधर आइए।

देवी आ रही हैं, व्रजेश्वर ने पैरों की आहट सुनी पैर उतार दिया। पाँचकौड़ी हँसकर बोली—क्या, पिछड़ते क्यों हो?

इस बार पाँचकौड़ी सहज गले से बोली थी। व्रजेश्वर बड़े तअज्जुब में आये।—यह क्या, यह तो पहचाना गला ही है।

हिम्मत करके पाँचकौड़ी के मुँह का रूमाल हटा दिया। पाँचकौड़ी खिलखिलाकर हँस उठी।

विस्मय में आकर ब्रजेश्वर ने कहा—यह क्या—यह क्या? तुम? तुम? सागर?

पाँचकौड़ी ने कहा—मैं सागर हूँ। गङ्गा नहीं, यमुना नहीं, झील नहीं, नहर नहीं, साक्षात् सागर हूँ। तुम्हारे बड़े अभाग्य हैं—क्यों? जब दूसरे की स्त्री सोचा था तब बड़े प्रेम से पैर दबा रहे थे, और जब तुम्हारी अपनी स्त्री होकर पैर दबाने की बात कही थी, तब मारे ग़ुस्से के तमतमाये हुए चले गये थे। ख़ैर, अब मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गई। तुमने मेरे पैर दबाये। अब मेरे मुँह की तरफ़ आँख उठाकर देख सकते हो, मुझे छोड़ो या पैरों पर रक्खो। अब समझ गये, मैं सही-सही ब्राह्मण की बेटी हूँ।

———

सातवाँ परिच्छेद

ब्रजेश्वर कुछ देर तक विह्वल हो रहा। अन्त में पूछा, "सागर, तुम यहाँ क्यों ?" सागर ने कहा--सागर के स्वामी, तुम्हीं यहाँ क्यों ?

ब्रज—ऐसा ही ? मैं क़ैदी हूँ; तुम भी क्या क़ैदी हो ? मुझे गिरफ़्तार कर लाये हैं, तुम्हें भी क्या गिरफ़्तार कर लाये हैं ?

सागर—मैं क़ैदी नहीं। मुझे कोई गिरफ़्तार नहीं कर लाया। मैंने अपनी इच्छा से देवी रानी की मदद ली। तुमसे अपने पैर दबवाऊँगी, इसलिए देवीरानी के राज्य में रह रही हूँ।

तब निशि आई। उसके वस्त्र और अलंकारों की तड़क-भड़क देखकर ब्रजेश्वर ने सोचा, "यही देवी चौधरानी हैं।" सम्मान की रक्षा के लिए ब्रजेश्वर उठकर खड़ा हो गया। निशि ने कहा--स्त्री डाकू भी हो, तो भी उसका इतना सम्मान नहीं करना चाहिए। आप बैठिए। अब आपने सुन लिया, आपके बजरे पर क्यों हमने डाका डाला ? अब सागर का प्रण पूरा हो चुका। अब आपकी हमें बिलकुल ज़रूरत नहीं। आप अपनी नाव पर वापस जायँगे तो कोई आपको रोकेगा नहीं। आपकी चीज़-वस्तु में से एक कौड़ी का सामान कोई नहीं लेगा। सब आपके बजरे में लौटाया जा रहा है। लेकिन यह पाँचकौड़ी—यह मुँहझौंसी सागर, इसका क्या होगा ? यह अपने नैहर लौट जायगी ?—या आप

इसे ले जायँगे ? याद कीजिए, आप इसके एक कौड़ी के ख़रीदे गुलाम हैं।

तअज्जुब पर तअज्जुब है। ब्रजेश्वर विह्वल हो गये। तब तो डाकेज़नी सब झूठ है। ये लोग डाकू नहीं। अन्त में सोचकर कहा—तुम लोगों ने मुझे बेवकूफ़ बनाया। मैंने मन में सोचा था, देवी चौधरानी के दल ने मेरे बजरे पर डाका डाला है।

निशि ने कहा—"सचमुच ही यह देवी चौधरानी का बजरा है। देवी रानी सचमुच ही डाका डालती हैं।" बात खत्म होते न होते ब्रजेश्वर ने कहा—देवी रानी सचमुच ही डाका डालती हैं—तो आप क्या देवी रानी नहीं ?

निशि—मैं देवी नहीं। आप अगर रानी जी को देखना चाहते हैं तो वे दर्शन दें तो दे भी सकती हैं। लेकिन जो कुछ कह रही थीं, वह पहले सुनिए। हम लोग सचमुच ही डाका डालते हैं, परन्तु आप पर डाका डालने का और कोई उद्देश नहीं, सिवा सागर की प्रतिज्ञा-रक्षा के। अब सागर घर किस तरह जाय ? प्रतिज्ञा तो पूरी हो गई।

ब्रज—आई किस तरह ?

निशि—रानी जी के साथ।

ब्रज—मैं भी तो सागर के नैहर गया था—वहाँ से आ रहा हूँ। कहाँ, मैंने तो वहाँ रानी जी को नहीं देखा।

निशि—रानी जी आपके बाद वहाँ गई थीं।

ब्रज—तो इसी बीच यहाँ कैसे आ गईं ?

निशि—हमारी किश्ती तो देखी है आपने पचास डाँड़ोंवाली ?

व्रज–तो आप ही लोग किश्ती से सागर को क्यों न छोड़ आयें ?

निशि—इसमें कुछ बाधा है। सागर किसी से कहे बिना रानी के साथ आई है। अब दूसरे आदमी के साथ लौटने पर सब पूछेंगे, कहाँ गई थी ? आपके साथ लौटने पर उत्तर की चिन्ता नहीं रहेगी।

व्रज—अच्छा, ऐसा ही होगा। आप कृपा करके किश्ती के लिए आज्ञा दे दीजिए।

"दे रही हूँ," कहकर निशि वहाँ से हट गई।

तब सागर को एकान्त में पाकर व्रजेश्वर ने कहा—सागर, तुमने क्यों ऐसी प्रतिज्ञा की ?

मुँह में आँचल लगाकर—इस दफ़ा ढाकेवाला रूमाल नहीं—साड़ी का जो हिस्सा हाथ में आया उसी से मुँह ढककर सागर रोई—वही मुखरा सागर आवाज़ दबा-दबाकर, काँप-काँपकर, चुपचाप बहुत रोई; चुपचाप—कहीं देवी न सुने।

रुलाई रुकने पर व्रजेश्वर ने पूछा—सागर, तुमने मुझे क्यों नहीं बुलाया ? बुलाने पर कुल शिकायत रफ़ा हो जाती।

रोना मुश्किल से रोककर, दोनों आँखें पोंछकर सागर ने कहा—भाग्य में भोग यह था; लेकिन मैंने न हो नहीं बुलाया, पर तुम्हीं क्यों नहीं आये ?

व्रज—तुमने मुझे निकाल दिया था। बिना बुलाये मैं जाता किस तरह ?

शास्त्रानुसार ये सब बातें समाप्त होने पर ब्रजेश्वर ने कहा—सागर, तुम डाकुओं के साथ क्यों आईं ?

सागर ने कहा—देवी रिश्ते की मेरी बहन लगती है, पहले से जान-पहचान थी। तुम्हारे चले आने पर वह मेरे नैहर जाकर पहुँची। मैं रो रही थी, देखकर उसने पूछा, "रो क्यों रही हो बहन ? तुम्हारे श्यामचन्द्र को बाँधकर ला दूँगी। मेरे साथ दो दिन के लिए चलो।" इसी लिए मैं चली आई। देवी पर पूरा पूरा विश्वास करने का मेरे लिए कारण है। तुम्हारे साथ मैं भागी जा रही हूँ, यह बात मैं नौकरनी से कह आई हूँ। तुम्हारे लिए यह सब फ़र्शी-तम्बाकू तैयार करा रक्खा है, पी लो ज़रा, तब जाना।

ब्रजेश्वर ने कहा—कहाँ, जो मालिक हैं वे तो कुछ भी नहीं कह रही हैं।

तब सागर ने देवी को पुकारा। देवी नहीं आईं—निशि आई।

निशि को देखकर ब्रजेश्वर ने कहा—अब आप किश्ती के लिए आज्ञा दें तो हम जायँ।

निशि—किश्ती तुम्हारी ही है। परन्तु देखो, तुम रानी के बहनोई हो। रिश्तेदार को अपनी जगह पाकर हम लोगों ने आदर नहीं किया, यह बड़ा दुःख रहा जाता है। हम लोग डाकू हैं इसलिए क्या हममें हिन्दूपन भी नहीं ?

ब्रज—क्या करने के लिए कहती हैं ?

निशि—पहले चढ़कर अच्छी तरह पत्थी मारकर बैठो।

वह फ़र्शी उसी दिन निकाली गई थी, वह तम्बाकू उसी दिन ख़रीदा गया था, सागर के स्वामी आयेंगे, इसी लिए। ब्रजेश्वर ने निगाली को उठाकर देखा, पी-सी नहीं जान पड़ी। तब ब्रजेश्वर धूम-पान के अकथनीय सुख में मज्जित हुए। निशि ने सागर से कहा—तू यहाँ खड़ी-खड़ी क्या कर रही है? मर्द लोग निगाली मुँह में लगा लेने पर भी कहीं बीबी-बच्चे को मन में जगह देते हैं? जा, तू कुछ बीड़े पान लगा ला। देखना, पान अपने हाथ के लगे हों; दूसरे के लगाये न लाना; हो तो थोड़ी सी दवा छोड़ लाना।

सागर ने कहा—मेरे ही हाथ के लगे रक्खे हैं। दवा जानती तो मेरी यह हालत क्यों होती?

यह कहकर सागर चन्दन-कपूर-चोआ-गुलाब से सुगन्धित पानों की एक राशि पनडब्बे में भरकर ले आई। निशि ने कहा—अपने पति को तूने बहुत उलटी-सीधी सुनाई हैं, कुछ जलपान को भी ले आ।

ब्रजेश्वर का मुँह सूखा, कहा—आफ़त है यह तो; इतनी रात को जलपान! इतनी माफ़ी दें।

लेकिन किसी ने उनकी बात नहीं मानी। सागर ने तुर्त-फुर्त एक कमरे में झाड़ू लगा पनिहे हाथ से जगह पोंछकर एक बड़ा मोटा आसन लगा दिया और सोने की चार-पाँच थालियों में जलपान सजा लिया। सोने के गिलास में उत्तम शीतल सुगन्धित जल रख दिया। मालूम कर निशि ने ब्रजेश्वर से कहा—जगह हो

गई है, उठो। ब्रजेश्वर ने झाँककर देखा और निशि के सामने हाथ जोड़े। कहा—डाका डाल कर कैद कर रक्खा है, यह अत्याचार तो सहा जा चुका है, मगर इतनी रात यह अत्याचार नहीं सहा जायगा; दोहाई है।

औरतों ने माफी नहीं दी। लाचार ब्रजेश्वर ने कुछ खाया। सागर ने तब निशि से कहा—"ब्राह्मण-भोजन के बाद कुछ दक्षिणा दी जाती है।" "दक्षिणा रानी स्वयं देंगी। आओ, भई, रानी को देखोगे, आओ।" यह कहकर निशि ब्रजेश्वर को एक दूसरे कमरे में ले गई।

आठवाँ परिच्छेद

निशि व्रजेश्वर को देवी के सोने के कमरे में ले गई। व्रजेश्वर ने देखा, सोने का कमरा दरबारवाले कमरे की तरह अपूर्व साज से सजा है। उससे अधिक यहाँ मोती की झालरोंवाला सोने का एक छोटा सा पलँग है। लेकिन व्रजेश्वर की उन सब की तरफ़ आँखें नहीं थीं। वे इतने बड़े ऐश्वर्य की स्वामिनी सुप्रसिद्ध देवी को देखना चाहते हैं। देखा, कमरे के भीतर काठ की खुली चौकी पर आधा घूँघट काढ़े एक स्त्री बैठी है। निशि और सागर में व्रजेश्वर को जो चञ्चलता देख पड़ी थी, इसमें उसका कुछ भी नहीं। यह स्थिर, धीर, नीची आँखें किये हुए बैठी है, लाज से सर झुकाये। निशि और सागर ख़ास तौर से निशि सब अङ्गों में रत्नों के आभूषण पहने है, क़ीमती साड़ी से सज्जित हैं, परन्तु इसके तो कुछ भी नहीं। देवी व्रजेश्वर से मिलने की इच्छा से क़ीमती वस्त्रालंकारों से सज्जित हुई थीं, यह पहले देख चुके हैं। परन्तु मिलने का समय आने पर, देवी ने सब अलंकार उतार डाले, साधारण वस्त्र पहनकर हाथ में एक मामूली गहना डालकर व्रजेश्वर की प्रतीक्षा करती रहीं। पहले निशि की अक़्ल लेकर देवी भ्रम में पड़ी थीं। अन्त में समझ में आने पर अपने आप तिरस्कार किया, छिः छिः, क्या किया है मैंने! ऐश्वर्य का जाल बिछाया है! इसी लिए यह वेश बदला।

ब्रजेश्वर को पहुँचाकर निशि चली गई। ब्रजेश्वर भीतर गये तो देवी ने उठकर ब्रजेश्वर को प्रणाम किया! देखकर ब्रजेश्वर और चकित हुए—किसी दूसरी ने तो नहीं प्रणाम किया! देवी ब्रजेश्वर के सामने खड़ी हुई। ब्रजेश्वर ने देखा, यथार्थ ही देवीमूर्ति है। क्या और कभी ऐसा देखा है? हाँ, ब्रज ने एक बार और ऐसा देखा था। वह और भी मधुर थी, क्योंकि देवी-मूर्ति तब बालिका की मूर्ति थी, तब ब्रजेश्वर का पहला यौवन था। हाय, यह अगर वही होती! यह मुँह देखकर ब्रजेश्वर को वह मुँह याद आया, मगर देखा, यह मुँह वह मुँह नहीं। उसका क्या कुछ भी इसमें नहीं? है क्यों नहीं, कुछ है। इसी लिए बिना कुछ कहे ब्रजेश्वर देखता रह गया। वह तो, बहुत दिन हुए, गुज़र चुकी है—लेकिन आदमी-आदमी में कभी इतना सादृश्य रहता है कि एक को देखने पर एक दूसरे की याद आती है। यह वैसा ही है न ब्रज?

ब्रज ने वैसा ही सोचा। परन्तु उस सादृश्य से हृदय भर गया—ब्रज की आँखों में आँसू आ गये, परन्तु गिरे नहीं। इसी लिए देवी वे आँसू नहीं देख पाई। देखती तो आज एक बड़ा मामला खड़ा हो जाता। दोनों बादलों में बिजली भरी हुई है।

प्रणाम करके नत आँखों से देवी कहने लगी—मैंने आज आपको ज़बरन् पकड़वा मँगाकर बड़ा कष्ट दिया है। क्यों मैंने यह कुकर्म किया, आप सुन चुके हैं। मेरा अपराध न लीजिएगा।

ब्रजेश्वर ने कहा—"आपने मेरा उपकार ही किया है।" ज्यादा बातचीत करने की ब्रजेश्वर में शक्ति नहीं। देवी ने और भी

कहा--आपने कृपा करके हमारे यहाँ जल ग्रहण किया है, इससे हमारी मर्यादा बहुत बढ़ गई है। आप कुलीन हैं—आपकी भी मर्यादा रखना हमारा कर्तव्य है। आप हमारे रिश्तेदार हैं। जो कुछ मैं मर्यादा के विचार से आपको दे रही हूँ, आप ग्रहण कीजिए।

व्रज—स्त्री के मुक़ाबले का और कौन सा धन होगा? आपने वही मुझे दिया है। इससे अधिक और क्या दीजिएगा?

आ व्रजेश्वर! क्या कहा तुमने? स्त्री जैसा धन और नहीं? तो पिता-पुत्र मिलकर प्रफुल्ल को निकाल क्यों दिया था?

पलँग के पास एक चाँदी की कलसी थी। उसे खींचकर निकालकर देवी ने व्रजेश्वर के पास रक्खा। कहा--इसे ग्रहण करना होगा।

व्रज—आपके बजरे में सोने-चाँदी का इतना फैलाव है कि यह कलसी लेने में एतराज़ करने पर सागर मुझे बकेगी। लेकिन एक बात है—

बात क्या है, देवी समझ गई। कहा—मैं शपथ खाकर कहती हूँ, यह चोरी या डाके का धन नहीं। मेरी अपनी कुछ वक़त है, आपने सुना होगा। अतएव लेने में कोई संशय न कीजिए।

व्रजेश्वर सम्मत हुआ। कुलीन के लड़के को या अध्यापक भट्टाचार्य को बिदाई या 'मर्यादा' के ग्रहण में लज्जा नहीं थी। अब भी शायद नहीं। कलसी बहुत भारी मालूम दी। व्रजेश्वर एकाएक उठा नहीं सके। कहा--यह क्या है, घड़ा ठस है क्या?

देवी—खींचते समय इसके भीतर आवाज़ हुई थी, ठस नहीं हो सकती।

व्रज—एं, ठीक तो, इसमें क्या है ?

घड़े में हाथ डालकर व्रजेश्वर ने निकाला। मोहरें थीं। घड़ा मोहरों से भरा है।

व्रज—ये किसमें डालकर रक्खें ?

देवी—डालकर रखिएगा क्यों ? ये सब आपको दी गई हैं।

व्रज—क्या ?

देवी—क्यों ?

व्रज—कितनी मोहरें हैं ?

देवी—तेंतीस सौ।

व्रज—तेंतीस सौ मोहरें पचास हज़ार रुपये के ऊपर हुईं। सागर ने आपसे रुपये की बात कही थी ?

देवी—सागर की ज़बानी सुना है, आपको पचास हज़ार रुपये की सख़्त ज़रूरत है।

व्रज—इसी लिए दे रही हैं ?

देवी—रुपये मेरे नहीं। मुझे दान करने का अधिकार नहीं। रुपये देवता के हैं, देवोत्तर मेरे ज़िम्मे है। मैं अपनी देवोत्तर सम्पत्ति से आपको यह रुपया क़र्ज़ दे रही हूँ।

व्रज०—मुझे इस रुपये की सख़्त ज़रूरत है। अगर चोरी करके या डाका डालकर यह रुपया मैं इकट्ठा करूँ, तो भी शायद अधर्म नहीं होगा। इस रुपये के बिना मेरे पिता की जाति

नहीं रहे रही। यह रुपया मैं लूँगा। लेकिन कब चुकाना होगा ?

देवी—देवता की सम्पत्ति है, देवता को मिलने से ही हुआ। मेरी मृत्यु का संवाद सुनने के बाद वह असल रुपया और एक मोहर ब्याज देव-सेवा में ख़र्च कर दीजिएगा।

ब्रज—वह मेरा ही ख़र्च करना होगा। यह आपको टाला देना हुआ। यह मुझे मञ्जूर नहीं।

देवी—आपकी जैसी इच्छा, वैसे चुकाइएगा।

ब्रज—मेरे पास रुपये आने पर मैं आपको भेज दूँगा।

देवी—आपका कोई आदमी मेरे पास नहीं आयेगा, पहुँच नहीं सकता।

ब्रज—मैं ख़ुद रुपया लेकर आऊँगा।

देवी—कहाँ आइएगा ? मैं एक जगह नहीं रहती।

ब्रज—जहाँ आप कह देंगी।

देवी—दिन ठीक-ठीक कहने पर, मैं जगह ठीक तौर से कह सकती हूँ।

ब्रज—मैं माघ-फागुन तक रुपया इकट्ठा कर सकूँगा। लेकिन कुछ बढ़ाकर वक्त लेना अच्छा है। मैं वैशाख के महीने में रुपया दूँगा।

देवी—तो वैशाख की शुक्ला सप्तमी की रात में इसी घाट पर रुपये लाइएगा। सप्तमी के चन्द्रास्त तक मैं यहीं रहूँगी। सप्तमी के चन्द्रास्त के बाद आने पर मुझसे मुलाक़ात नहीं होगी।

ब्रजेश्वर सहमत हुए। तब देवी ने परिचारिकाओं को आज्ञ दी, मोहरों का घड़ा किश्ती पर रख आओ। परिचारिकाएँ घड़ लेकर किश्ती पर गईं। ब्रजेश्वर भी देवी को आशीर्वाद देक किश्ती पर जा रहे थे। देवी ने रोककर कहा, एक बात अभी बाक़ है। यह तो क़र्ज़ दिया—'मर्यादा' कहाँ दी ?

ब्रज—घड़ा 'मर्यादा' हुआ।

"आपके योग्य मर्यादा नहीं। यथासाध्य मर्यादा की रक्ष करूँगी।" यह कहकर देवी ने अपनी अँगुली से एक अँगूठ उतारी। ग्रहण करने के लिए ब्रजेश्वर ने हँसकर हाथ बढ़ाया। देव ने हाथ में अँगूठी डाल नहीं दी। ब्रजेश्वर का हाथ पकड़ा—ख अँगूठी पहनायेगी।

ब्रजेश्वर जितेन्द्रिय हैं, परन्तु मन के भीतर कैसा एक गोलमाल हो गया, जितेन्द्रिय ब्रजेश्वर यह नहीं समझ सके। देह रोमाञ्चि हुई—भीतर जैसे अमृत की धारा बहने लगी। जितेन्द्रि ब्रजेश्वर हाथ हटा लेना भूल गये। विधाता एक-एक समय ऐसी अड़चन डालते हैं, समय पर अपना काम भूल जान पड़ता है।

अस्तु, देवी उसी मानसिक गोलमाल के समय ब्रजेश्वर क अँगुली में धीरे-धीरे अँगूठी पहनाने लगी। उसी समय दो बूँद ग आँसू ब्रजेश्वर के हाथ पर गिरे। ब्रजेश्वर ने देखा, देवी का मुँ आँसुओं से प्लावित है। किस तरह क्या हुआ, हम नहीं कह सकते ब्रजेश्वर तो जितेन्द्रिय हैं, लेकिन मन में अख़्तियार से बाहरवाली

बात पैदा हो गई थी। वह एक और मुँह याद आया। शायद, उस मुँह पर उस रात को इसी तरह आँसुओं की धारा बही थी।—वह आँसू पोंछना भी शायद याद आया। यही वह है, वही यह है, ऐसा ही एक क्या गोलमाल खड़ा हो गया। ब्रजेश्वर ने बग़ौर कुछ समझे—क्यों, नहीं मालूम—देवी के कन्धे पर हाथ रक्खा, दूसरा हाथ पकड़कर मुँह ऊपर को उठाया—शायद मुँह प्रफुल्ल के मुँह की तरह का देखा। विवश, विह्वल होकर, उस आँसुओं से भीगे बिम्बाधर पर—आः छिः छिः! ब्रजेश्वर! फिर!

उस समय ब्रजेश्वर के सर पर जैसे आकाश टूट पड़ा। क्या किया। यह क्या प्रफुल्ल है? वह तो, दस साल हुए, मर गई है। ब्रजेश्वर एक साँस लम्बी खींचकर किश्ती पर जाकर बैठा। सागर को भी साथ नहीं ले गया। "पकड़ो, पकड़ो, असामी भागा" कहती सागर पीछे-पीछे दौड़ी और किश्ती पर चढ़ गई। किश्ती खोल कर लोगों ने ब्रजेश्वर को और ब्रजेश्वर के दो रत्नाधारों—सागर और उस घड़े को—ब्रजेश्वर की नाव पर पहुँचा दिया।

इधर निशि देवी के शयन-कक्ष में गई। देखा, देवी नाव के तख़्ते पर लोटती हुई रो रही है। निशि ने उसे उठाकर बैठाया। आँखों के आँसू पोंछे। स्थिर किया। कहा—माँ, क्या यही तुम्हारा निष्काम धर्म है? यही संन्यास है? माँ, भगवद्वाक्य अब कहाँ है?

देवी चुपचाप रही। निशि ने कहा—वे सब व्रत औरत के लिए नहीं। अगर औरत को उस रास्ते जाना होगा तो मेरी तरह

होना होगा। मुझे रुलाने के लिए व्रजेश्वर नहीं। मेरे व्रजेश्वर और वैकुण्ठेश्वर एक हैं!

देवी ने आँखें पोंछकर कहा—तुम यम के यहाँ जाओ।

निशि—मुझे एतराज़ नहीं। लेकिन मुझ पर यम का अधिकार नहीं। तुम संन्यास छोड़कर घर जाओ।

देवी—वह रास्ता खुला होता तो मैं इस रास्ते न आती। अब बजरा खोल देने के लिए कहो। चार पाल चढ़ाओ।

तब वह जहाज़-जैसा बजरा चढ़े चार पालों से पक्षी की तरह उड़ गया।

—

नवाँ परिच्छेद

ब्रजेश्वर अपनी नाव पर आकर गम्भीर होकर बैठे। सागर से बातचीत नहीं करते। देखा, देवी का बजरा पालों के ज़ोर से पक्षी की तरह उड़ गया। तब ब्रजेश्वर ने सागर से पूछा—बजरा कहाँ गया?

सागर ने कहा—यह देवी के सिवा और कोई नहीं जानता। ये सब बातें देवी और किसी से नहीं कहती।

ब्रज—देवी कौन है?

सागर—देवी देवी है।

ब्रज—तुम्हारी कौन होती है?

सागर—बहन।

ब्रज—किस तरह की बहन?

सा०—रिश्ते की

ब्रजेश्वर फिर चुप हो गया। माझियों को पुकारकर पूछा—तुम लोग बड़े बजरे के साथ चल सकते हो? माझियों ने कहा—वह ताब नहीं। वह तो नखत की तरह जा रहा है। ब्रजेश्वर फिर चुप हो गया। सागर सो गई।

प्रभात हुआ। ब्रजेश्वर का बजरा चला।

सूर्य निकलने पर सागर ब्रजेश्वर के पास आकर बैठी। ब्रजेश्वर ने पूछा—देवी क्या डाकेज़नी करती है?

सागर—तुम्हें क्या जान पड़ता है ?

व्रज—डाके की तरह तो सब कुछ देखा। डाका डाले तो डाल सकती है, यह भी देखा। फिर भी विश्वास नहीं होता कि डाका डालती है।

सा०—फिर भी क्यों विश्वास नहीं होता ?

व्रज—क्या जानूँ। डाका बिना डाले इतना धन भी कहाँ पाया ?

सा०—कोई कहता है, देवी ने देवता के वरदान से इतना धन पाया है; कोई कहता है, देवी सोना बनाना जानती है।

व्रज—देवी क्या कहती है ?

सा०—देवी कहती है, एक कौड़ी भी मेरी नहीं, सब दूसरे का है।

व्रज—दूसरे का धन इतना पाया कहाँ ?

सा०—क्या मालूम !

व्रज—दूसरे का धन होता तो इतनी अमीरी करती, दूसरे कुछ न कहते ?

सा०—देवी कोई अमीरी नहीं करती, खद्दर खाती है, ज़मीन पर सोती है, गाढ़ा पहनती है। कल जो कुछ देखा, वह सब तुम्हारे-हमारे लिए है, सिर्फ़ दूकानदारी। तुम्हारी उँगली में वह क्या है ?

सागर ने व्रजेश्वर की उँगली में नई अँगूठी देखी।

व्रजेश्वर ने कहा—कल देवी की नाव पर जलपान किया था, इसलिए देवी ने यह अँगूठी मुझे 'मर्यादा' दी है।

सा०—देखूँ।

व्रजेश्वर ने अँगूठी खोलकर देखने को दी। सागर ने हाथ में लेकर घुमा-घुमाकर देखा। कहा—इसमें देवी चौधरानी का नाम लिखा है।

व्रज—कहाँ ?

सा०—भीतर, फ़ारसी में।

व्रज—(पढ़कर) यह क्या ? यह तो मेरा नाम है—मेरी अँगूठी है ! सागर, तुम्हें मेरी क़सम है। अगर तुम मुझसे सच-सच न कहो। मुझे बताओ, देवी कौन है।

सा०—तुम पहचान नहीं सके, यह क्या मेरा क़सूर है ? मैंने तो क्षण भर में पहचान लिया था।

व्र०—कौन—कौन, देवी कौन है ?

सा०—प्रफुल्ल।

दोबारा व्रजेश्वर ने बात नहीं की। सागर ने देखा, पहले व्रजेश्वर के रोंगटे खड़े हो गये, फिर एक अकथनीय आनन्द का चिह्न—उमड़ते हुए सुख की तरङ्ग चेहरे पर दिखी। मुख उज्ज्वल, आँखें चमकती हुई अथच आँसुओं भरी, देह उन्नत, कान्ति स्फूर्ति-मयी। इसके बाद ही सागर ने देखा, व्रजेश्वर निर्वाक् है, देह हिलती नहीं, आँखों की पलकें नहीं गिरतीं ! क्रमशः, सागर के मुँह की ओर देखते हुए व्रजेश्वर ने आँखें मूँद लीं। देह अवसन्न हो गई, व्रजेश्वर सागर की गोद पर सर रखकर लेट गया। कातर होकर सागर ने बहुत कुछ पूछा, लेकिर कोई उत्तर नहीं पाया। एक दफ़ा व्रजेश्वर ने कहा, प्रफुल्ल डाकू है ! छिः !

दसवाँ परिच्छेद

ब्रजेश्वर और सागर को बिदा करके देवी चौधरानी—हाय! कहाँ गई वह देवी? कहाँ गये वे वस्त्राभूषण, ढाके की साड़ी, सोने के दानेवाला ज़ेवर, हीरे, मोती, पन्ने—सब कहाँ गये? देवी ने सब कुछ छोड़ दिया है—सब कुछ बिल्कुल तिरोहित हो गये हैं। देवी ने सिर्फ़ एक गाढ़े की धोती पहनी है—हाथों में सिर्फ़ एक जोड़ी कड़े हैं। बजरे के एक बगल तख़्ते पर चट* बिछाकर देवी लेटी। सोई या नहीं, नहीं मालूम।

सुबह को बजरा सोची हुई जगह पर आ लगा, देखकर देवी ने नदी में उतरकर स्नान किया। नहाकर भीगे वस्त्र से ही रही—उसी चट की तरह की मोटी साड़ी। ललाट और हृदय को गङ्गा की मिट्टी से चर्चित किया, रूखे भीगे बाल खोल दिये। उस समय देवी का जो सौन्दर्य निकला, बीती रात की वेशभूषा, भड़कीलेपन, हीरे, मोती, चाँदनी या रागिनी में वह नहीं देखने को मिला। कल देवी रत्नाभूषणों से राजरानी की तरह दिखी थी, आज गङ्गा की रेणुका के चढ़ाव से देवी की तरह दिख रही है। जो सुन्दरी है, वह मिट्टी छोड़कर हीरे क्यों पहनती है?

---

* चट वह है जिसके बोरे बनते हैं।

देवी इस अनुपम वेश से केवल एक स्त्री को अपने साथ लेकर किनारे-किनारे चली, बजरे पर नहीं चढ़ी। इस तरह काफ़ी दूर जाकर एक जङ्गल में पैठी। हम बात-बात पर जङ्गल की चर्चा कर रहे हैं—इससे पाठक यह न सोचें, हम ज़रा भी अत्युक्ति कर रहे हैं या जङ्गल या डाकुओं की चाह रखते हैं। जिस समय की बात कह रहे हैं, उस समय देश जङ्गलों से पूर्ण था। इस समय भी बहुत जगह बड़े भयावह जङ्गल हैं, कुछ को हम अपनी आँखों देख आये हैं। और डाकुओं की तो बात ही नहीं। पाठकों को याद रहे कि भारत के डाकुओं का शासन करते हुए मारकुइस आव हेस्टिंग्ज़ को इतनी बड़ी लड़ाई लड़नी पड़ी थी कि पञ्जाब की लड़ाई से पहले उतनी बड़ी नहीं लड़नी पड़ी। इस अराजकता के समय में डाका ही शक्तिवाले आदमियों का व्यवसाय था। जो कमज़ोर या महामूर्ख थे, वही 'भले आदमी' कहे जाते थे। डाकेज़नी में तब कोई निन्दा या लज्जा की बात नहीं थी।

देवी जङ्गल के भीतर पैठकर बहुत दूर तक गईं। एक पेड़ के नीचे पहुँचकर परिचारिका से कहा, "दिवा, तू यहाँ बैठ। मैं आती हूँ। इस वन में बाघ-रीछ बहुत थोड़े हैं। आयेंगे भी तो डर की बात नहीं। लोग पहरे पर हैं।" यह कह कर देवी वहाँ से और भी घने जङ्गल के भीतर गईं। बहुत ही निविड़ जङ्गल है क्या सुरङ्ग है। पत्थर की सीढ़ियाँ जहाँ उतरना पड़ता है, वह है; पत्थर की इमारत। जान पड़ता है, पहले देवालय था। मुझे काल के प्रवाह में चारों तरफ़ मिट्टी पड़ गई है। नहीं।

उतरने के लिए सीढ़ी गढ़ने की ज़रूरत हुई है। देवी अँधेरी सीढ़ी पर उतरी।

ज़मीन के भीतर के उस मन्दिर में टिमटिमाता हुआ एक दिया जल रहा था। उसके प्रकाश में एक शिवलिङ्ग देख पड़ा। एक ब्राह्मण उस शिवलिङ्ग के सामने बैठा हुआ पूजा कर रहा था। देवी शिवलिङ्ग को प्रणाम कर ब्राह्मण से कुछ दूर बैठी। ब्राह्मण पूजा समाप्त करके आचमन कर देवी से बातचीत करने लगा।

ब्राह्मण ने कहा—माँ, कल रात को तुमने क्या किया है? तुमने क्या डाका डाला है?

देवी ने पूछा—आपको क्या विश्वास होता है?

ब्राह्मण ने कहा—क्या मालूम?

ब्राह्मण और कोई नहीं, हमारे पहले के पहचाने हुए भवानी महाराज हैं।

देवी ने कहा—क्या मालूम क्या महाराज? आप क्या मुझे जानते नहीं? आज दस साल से डाकुओं के दल के साथ-साथ घूमती रही। लोग समझते हैं, जितने डाके पड़ते हैं, सब मैं डलवाती हूँ। फिर भी एक दिन के लिए यह काम मेरे द्वारा नहीं हुआ। यह ‥ाप अच्छी तरह जानते हैं। फिर भी कहते हैं, क्या मालूम?

के च‥ ‥वानी—नाराज़ क्यों होती हो? हम जिस मतलब से डाका

मिट्टी छो‥ उसे बुरा नहीं समझते। अगर बुरा समझते तो एक

‥ भी वैसा काम न करते। तुम भी यह काम बुरा

* चट वह है। ‥ायद। क्योंकि, समझतीं तो ये दस साल—

देवी—इस सम्बन्ध में मेरा मत बदल रहा है। मैं आपकी बात पर इतने दिन भूली थी, अब नहीं भूलूँगी। दूसरे की चीज़ छीन लेना बुरा काम नहीं तो महापातक क्या है? आपके साथ अब कोई सम्बन्ध नहीं रक्खूँगी।

भवानी—यह क्या? इतने दिन जो समझाता आया हूँ, वही क्या फिर तुम्हें समझाना होगा? यदि इस डाके के धन की एक कौड़ी भी मैं ग्रहण करता तो महापातक अवश्य होता। लेकिन तुम तो जानती हो, सिर्फ़ दूसरों को देने के लिए मैं डाका डालता हूँ। जो धार्मिक है, जो सच्चे रास्ते पर रह कर पैसा कमाता है, जिसकी धनहानि होने पर खाने-पहनने का कष्ट होगा, रङ्गराज ने या मैंने कभी उसका एक पैसा भी नहीं लिया। जो ठग है, दग़ाबाज़ है, दूसरे का धन छीनकर या धोखा देकर लिया है, हम उसी पर डाका डालते हैं। डालकर एक पैसा नहीं लेते, जिसका धन बच्चकों ने लिया था उसे ही बुलाकर दे देते हैं। क्या यह सब तुम नहीं जानतीं? देश अराजक है, देश में राजा का शासन नहीं, दुष्टों का दमन नहीं, जो जिसका पाता है, छीनकर खाता है। हम लोग इसी लिए तुम्हें रानी बनाकर राज्य-शासन चला रहे हैं। तुम्हारे नाम से हम लोग दुष्टों का दमन और शिष्टों का पालन करते हैं, यह क्या अधर्म है?

देवी—राजा-रानी जिसे आप बनायेंगे, वही होगा। मुझे छुटकारा दीजिए—अब इस रानीगरी में मेरा चित्त नहीं।

भवानी—किसी दूसरे को यह राज्य शोभा नहीं देता, और, किसी के अतुल ऐश्वर्य नहीं—तुम्हारे धन-दान से सब तुम्हारे वश हैं।

देवी—मेरे जो धन है, सब मैं आपको दे रही हूँ। वह रुपया जिस तरह मैं ज़र्च करती थी, आप भी उसी तरह कीजिएगा। मैं काशी जाकर रहूँगी, मन में स्थिर किया है।

भवानी—केवल तुम्हारे धन से ही सब लोग तुम्हारे वश थोड़े ही हैं? तुम रूप से भी यथार्थ राजरानी हो, गुण से भी यथार्थ राजरानी हो। बहुत से लोग तुम्हें साक्षात् भगवती जानते हैं, क्योंकि तुम संन्यासिनी हो। माँ की तरह दूसरे की मङ्गल कामना करती हो, बिना हिचक के धन दान करती हो, पुनः भगवती की तरह रूपवती हो, इसी लिए हम लोग तुम्हारे नाम से यह राज्य-शासन करते हैं, नहीं तो हम लोगों को कौन मानता?

देवी—इसी लिए लोग मुझे डाकू जानते हैं। यह बदनामी मरने पर भी नहीं जायगी।

भवानी—बदनामी कैसी? इस वरेन्द्र भूमि में आज कल ऐसे कौन हैं जो इस नाम से लज्जित हैं? लेकिन यह याद रहे, धर्म के आचरण में नेकनामी और बदनामी खोजने की क्या ज़रूरत है? बदनामी की तरफ़ ख़याल गया तो कर्म निष्काम फिर कैसे हुआ? तुम अगर बदनामी से डरीं तो मानी ये हुए कि तुमने अपनी अच्छाई की तलाश की, दूसरे के लिए नहीं सोचा। आत्म-बलिदान इस तरह कहाँ हुआ?

देवी—मैं आपसे तर्क में पार नहीं पाऊँगी। आप महामहोपाध्याय हैं। मेरी स्त्री-बुद्धि की जहाँ तक पहुँच है, मैं कहती हूँ। मैं इस रानीगरी से अवसर चाहती हूँ। यह मुझे अब अच्छी नहीं लगती।

भवानी—अगर अच्छी नहीं लगती तो कल रङ्गराज को डाका डालने के लिए क्यों भेजा था? बात मुझसे छिपी नहीं, यह कहना अत्युक्ति होगी।

देवी—बात अगर छिपी नहीं तो आपको यह भी मालूम होगा कि कल रङ्गराज ने डाका नहीं डाला—सिर्फ़ डाका डालने का तमाशा किया था।

भवानी—क्यों? यह मुझे नहीं मालूम, इसी लिए पूछता हूँ।

देवी—एक आदमी को पकड़ लाने के लिए।

भवानी—वह कौन आदमी है?

देवी की ज़बान पर नाम कुछ रुका परन्तु नाम बिना लिये भी नहीं चलता। भवानी के साथ धोखेबाज़ी नहीं चलेगी। अस्तु, लाचार होकर देवी ने कहा—उनका नाम है ब्रजेश्वर राय।

भवानी—मैं उसे अच्छी तरह पहचानता हूँ। उसकी तुम्हें क्या आवश्यकता थी?

देवी—उन्हें कुछ देने की ज़रूरत थी। उनके पिता इज़ारेदार के हाथ क़ैद होने को थे। कुछ देकर ब्राह्मण की जाति बचाई है।

भ०—अच्छा नहीं किया। हरवल्लभ राय बड़ा नीच है। व्यर्थ की बात में अपनी समधिन को बेजात क़रार दिया था। उसकी जाति जाना ही अच्छा था।

देवी काँपी। पूछा—वह किस तरह ?

भ०—उसकी एक पुत्रवधू थी। उसके कोई नहीं था। सिर्फ़ विधवा माँ थी। हरवल्लभ ने उस ग़रीब पर बाग़ी की बदनामी चढ़ाकर बहू को घर से निकाल दिया था। मारे दुःख के बहू की माँ मर गई।

दे०—और बहू ?

भ०—सुना है कि खाने को न पाकर मर गई।

दे०—हमें इन सब बातों से क्या मतलब ? हम लोगों ने दूसरे के हित का व्रत लिया है। जिसका भी दुःख देखेंगे, उसी का दुःख दूर करेंगे।

भ०—हानि नहीं। परन्तु फ़िलहाल बहुत से लोग ग़रीबी के शिकार हो रहे हैं। इज़ारेदारों के अत्याचार से उनका सर्वस्व नष्ट हो गया है। इस समय वे कुछ कुछ पायें तो खाकर सँभलें। तन में कुछ बल हो। बल पहुँचने पर लठैती करके अपना अपना स्वत्व छुटा सकेंगे। जल्द एक दिन दरबार करके उनकी रक्षा करो।

दे०—तो प्रचार कीजिए कि यहीं आगामी सोमवार को दरबार होगा।

भ०—नहीं। यहाँ अब तुम्हारा रहना नहीं होगा। अँगरेज़ों को टोह मिली है कि तुम इस प्रदेश में हो। इस दफ़ा पाँच सौ सिपाही लेकर तुम्हारी तलाश में आ रहे हैं। इसलिए यहाँ दरबार नहीं होगा। वैकुण्ठपुर के जङ्गल में दरबार होगा, मैंने प्रचार

किया है। दिन सेामवार निश्चित किया है। उस जङ्गल में सिपाही जाने की हिम्मत नहीं करेंगे। जायँगे तो मारे जायँगे। इच्छानुसार रुपये लेकर आज ही वैकुण्ठपुर के जङ्गल को जाओ।

"अब मैं चली। परन्तु और मैं यह काम करूँगी या नहीं, इसमें सन्देह है। इसमें मेरा मन नहीं।" यह कहकर देवी उठी। फिर जङ्गल चीरकर बजरे पर जा चढ़ी। चढ़कर रङ्गराज़ को बुलाकर चुपचाप यह उपदेश दिया—आगामी सेामवार को वैकुण्ठपुर के जङ्गल में दरबार लगेगा। इसी वक्त बजरा खोल दो। वहीं चलो। बरकन्दाज़ों को खबर दो। देवीगढ़ होकर जाना—रुपया ले जाना होगा। साथ ज़्यादा रुपया नहीं।

तब क्षण भर में बजरे के मस्तूल पर तीन-चार छोटे-बड़े सफ़ेद पाल हवा में फूलने लगे; किश्ती बजरे के सामने लाकर बजरे में बाँधी गई। उसपर साठ जवान डाँड़ लिये बैठे हुए; 'रानीजी की जय' कहकर खेना शुरू किया—वह जहाज़ जैसा बजरा तब तीर की तरह छूटा। इधर देखा गया, एक बड़ी संख्या में, राही या बाज़ार जानेवाले लोग जैसे आदमी नदी के किनारे जङ्गल के भीतर से बजरे के साथ-साथ दौड़े जा रहे हैं। इनके हाथों में सिर्फ़ एक-एक लाठी है। परन्तु बजरे के भीतर बहुत सी ढालें, बल्लम और बन्दूक़ें हैं। ये देवी के बरकन्दाज़ सिपाही हैं।

सब दुरुस्त है, देखकर देवी अपने हाथ शाक-भोजन पकाने के लिए रसेाई की तरफ़ गई। हाय, देवी! तुम्हारा यह कैसा संन्यास है!

ग्यारहवाँ परिच्छेद

सोमवार को सुबह का सूरज चमकने लगा, घने जङ्गल के भीतर देवीरानी का दरबार या इजलास लगा हुआ। उस इजलास में कोई मामला-मुक़द्दमा नहीं होता था। राजकार्यों में सिर्फ़ एक काम होता था—अकुण्ठित दान।

घना जङ्गल है; परन्तु उसके भीतर लगभग तीन सौ बीघे ज़मीन साफ़ की गई है। परन्तु बड़े बड़े पेड़ नहीं काटे गये, उनकी छाँह में आदमी खड़े होंगे। उस साफ़ की हुई ज़मीन के टुकड़े पर प्रायः दस हज़ार आदमी जमा हुए हैं। बीच में देवी रानीन का इजलास है। एक बड़ा शामियाना पेड़ की डालों से बाँसमें कर लगाया गया है। उसके नीचे बड़े-बड़े चाँदी के डण्डों पर एक ले कमख़ाब का चँदोआ लगा है। उसमें मोती की झालरें हैं। उसके भीतर चन्दन की लकड़ी की वेदी है, उस पर मोटा ग़लीचा बिछा हुआ है। ग़लीचे पर चाँदी का एक छोटा सिंहासन है। सिंहासन पर मसनद, उसमें भी मोती की झालरें लगी हुई। देवी का पहनाव भी आज बड़ा भड़कीला है। साड़ी पहने हुए है। साड़ी के फूलों के बीच बीच एक-एक हीरा लगा है। अङ्ग रत्नों से अलंकृत—कहीं-कहीं, बीच-बीच, देह का निखरा गोरा रङ्ग देख पड़ता है। गले में मोतियों के इतने हार हैं कि छाती का वस्त्र नहीं देख पड़ता। सर पर रत्नमय मुकुट है। देवी आज शरत्काल की यथार्थ देवी-

प्रतिमा की तरह सजी है। यह सब देवी की रानीगरी है। दोनों तरफ़ सजी हुई चार युवतियाँ सोने की डण्डी वाले चौंर लेकर झल रही हैं। बग़ल में और सामने बहुत से चाबदार और आसा-बरदार बड़ी भड़कीली पोशाक पहने चाँदी की बड़ी-बड़ी आसा बल्लमें कन्धे पर रक्खे खड़े हैं। सबसे ज़्यादा भड़कीलापन बरकन्दाज़ों की क़तारों से मालूम देता है। प्राय: पाँच सौ बरकन्दाज़ देवी के सिंहासन के दोनों तरफ़ क़तार बाँधकर खड़े हैं। सबके सर पर लाल पगड़ी शोभा दे रही है, बदन में लाल अँगरखा, लाल धोती जाँघिया के तौर पर पहनी, पैरों में लाल चमरौधे जूते, हाथों में ढाल और बल्लम। चारों तरफ़ लाल झंडे गड़े हराते हुए।

रुपयेदेवी सिंहासन पर बैठी। उन दस हज़ार आदमियों ने एक य 'देवी रानी की जय' का नारा लगाया। इसके बाद दस सुसज्जित युवाओं ने आगे बढ़कर मधुर कण्ठ से देवी का स्तुतिगान किया। इसके बाद उन दस हज़ार आदमियों के भीतर से एक-एक करके भिक्षार्थियों को रङ्गराज देवी के सिंहासन के पास लाने लगा। सामने आ-आकर भक्तिभाव से वे साष्टाङ्ग प्रणाम करने लगे। जो उम्र में जेठे और ब्राह्मण थे, उन्होंने भी प्रणाम किया, क्योंकि बहुतों का विश्वास था कि देवी भगवती का अंश है, लोगों के उद्धार के लिए अवतीर्ण हुई है। इसी लिए उनमें से कोई कभी उनकी टोह अँगरेज़ों को नहीं देता था, या उनकी गिरफ़्तारी के लिए अँगरेज़ों की मदद नहीं करता था। देवी

सबको मधुर भाषा में सम्बोधन करके उनकी हालत पूछती रहीं। पूछकर जिसकी जैसी अवस्था देखी, उसे वैसा दान देने लगीं। पास रुपयों से भरे घड़े क़तार में रक्खे थे।

इस तरह सुबह से शाम तक देवी ने दरिद्रों को दान किया। सन्ध्या बीत गई, एक पहर रात हुई। तब दान समाप्त हुआ। तब तक देवी ने जल ग्रहण नहीं किया। देवी के डाके का यह रूप है; दूसरा डाका वे नहीं डालतीं।

कुछ दिनों में रङ्गपुर में गुडलैड् साहब के पास ख़बर पहुँची कि वैकुण्ठपुर के जङ्गल में देवी चौधरानी का डाकुओं का दल इकट्ठा हुआ है—डाकुओं की संख्या इतनी है कि नहीं बतलाई जा सकती। यह भी प्रचारित हुआ कि बहुत से डाकू प्रभूत धन लेकर घर लौट रहे हैं, अतएव उन्होंने बहुत से डाके डाले हैं, इसमें सन्देह नहीं। जो लोग देवी के हाथ दान पाकर घर रुपया ले आये थे, वे सब क़र्ज़दार आदमी थे—कहाँ, रुपया कहाँ? इसका कारण भय है, इज़ारेदार के सिपाही रुपये की बात सुनकर सब छीन ले जायँगे लेकिन वे लोग रुपये को ख़र्च करने लगे। फलतः लोगों को यह विश्वास हुआ कि देवी चौधरानी अब लम्बे हाथ मार रही है।

———

बारहवाँ परिच्छेद

यथासमय पिता के पास पहुँचकर व्रजेश्वर ने उनके पैर छुए।

दूसरी दूसरी बातों के बाद हरवल्लभ ने पूछा—असली खबर क्या है ? रुपये का क्या हुआ ?

व्रजेश्वर ने कहा कि उनके ससुर रुपये नहीं दे सके। हरवल्लभ के सर पर वज्रपात हुआ। चिल्लाकर हरवल्लभ ने पूछा, तो फिर रुपये नहीं मिले ?

"मेरे ससुर तो रुपये नहीं दे सके, पर एक दूसरी जगह से रुपये मिले हैं।"

हरवल्लभ—मिले हैं ? मुझसे अब तक तुमने नहीं कहा; राम-राम, जान बची !

व्रज—रुपया जिस जगह मिला है, वहाँ से लेना चाहिए या नहीं, नहीं कह सकता।

हर—किससे मिले ?

व्रजेश्वर ने सर झुका लिया, फिर सर खुजलाते-खुजलाते कहा—उसका नाम नहीं याद आ रहा—वही जो एक डाकू औरत है—

हर—कौन ?—देवी चौधरानी ?

प्र०—हाँ, वही, उसी से।

हर—उससे रुपया किस तरह मिला ?

ब्रजेश्वर के प्राचीन नीतिशास्त्र में है कि यहाँ बाप से छिपाव करने में दोष नहीं। उसने कहा, रुपया एक सुयोग से मिल गया है।

हर—बुरे आदमी का रुपया है। लिखा-पढ़ी कैसी हुई है?

ब्रज—एक सुयोग से मिला है, इसलिए लिखा-पढ़ी नहीं करनी पड़ी।

बाप इस विषय में ज्यादा खोद-खादकर न पूछे, इस अभिप्राय से ब्रजेश्वर ने उसी वक्त बात दबा दी, पाप का धन जो लेता है, वह भी पाप का भागी होता है। इसी लिए यह रुपया लिया जाय, मेरा मत नहीं।

गुस्से में आकर हरवल्लभ ने कहा—रुपया लेंगे नहीं, तो क्या फाटक (क़ैद) में जायँगे? रुपया क़र्ज़ लेंगे, इसमें पाप का रुपया पुण्य का रुपया क्या है? और जप-तप का रुपया भी किसके पास पायँगे? ऐसे एतराज़ की ज़रूरत नहीं; असली एतराज़ यह है कि डाकू का रुपया है, इस पर लिखापढ़ी नहीं की, डर है कि कहीं देर हुई तो घर-द्वार न लूट-पाटकर ले जाय।

ब्रजेश्वर चुप रहा।

हर०—तो रुपये की मियाद कितने दिनों की है?

ब्रज—आगामी वैशाख की शुक्ला सप्तमी के चन्द्रास्त तक।

हर०—लेकिन, वह डाकू है; मुलाक़ात नहीं करती; कहाँ उससे मुलाक़ात होगी कि रुपये भेज देंगे?

ब्रज—उसी दिन सन्ध्या के बाद वह सन्धानपुर में कालसाजी के घाट में बजरे पर रहेगी। वहीं रुपया भेज देने से होगा।

हरवल्लभ ने कहा—तो उस दिन वहीं रुपया भेज दिया जायगा।

व्रजेश्वर विदा हुए। हरवल्लभ ने मन ही मन अक्ल लड़ाकर इस बात पर अच्छी तरह विचार किया। अन्त में निश्चय किया, हाँ; उस बेटी का रुपया चुकाया जायगा! सिपाही लाकर बेटी को पकड़ा देने पर कुल बखेड़ा मिट जायगा। बैशाख की शुक्ला सप्तमी को शाम के बाद कप्तान साहब अपनी पल्टन के साथ उसके बजरे पर न चढ़े तो मेरा नाम हरवल्लभ नहीं। उसे अब मुझसे रुपया नहीं लेना होगा।

यह पवित्र उद्देश हरवल्लभ ने अपने मन में ही रक्खा। विश्वास करके व्रजेश्वर से नहीं कहा।

इधर सागर बूढ़ी दादी के पास पहुँचकर गप लड़ाने लगी कि व्रजेश्वर एक रानी के बजरे पर जाकर उससे विवाह कर आये हैं, सागर ने बहुत मना किया था, लेकिन उन्होंने बात नहीं मानी। वह औरत जात की केवट है, और उसकी दो शादियाँ हो चुकी हैं, इसलिए व्रजेश्वर की जाति नहीं रही। सागर अब व्रजेश्वर की थाली का छूटा अन्न नहीं खायगी, उसने निश्चित रूप से प्रतिज्ञा की है। दादी ने ये बातें व्रजेश्वर से पूछीं तो व्रजेश्वर ने स्वीकार करके कहा, रानीजी जाति में अच्छी हैं—मेरे पिताजी की बुआ लगती हैं। और विवाह—सो मेरे भी तीन हैं, उसके भी तीन हैं।

दादी समझ गई, बात झूठ है। परन्तु सागर की इच्छा थी कि दादी यह गप नयनतारा को सुनायें। इसको ज़रा भी देर नहीं हुई। नयनतारा एक तो सागर को देखकर जल गई थी,

फिर सुना कि पति एक बूढ़ी लड़की से व्याह कर आये हैं। नयनतारा एकबारगी आग की तरह जल उठी। फलतः कुछ दिनों तक ब्रजेश्वर नयनतारा की बग़ल से नहीं गुज़र सके। सागर के महल में रहे।

सागर का मतलब सिद्ध हुआ। परन्तु नयनतारा ने बड़ा ग़ुल मचाया। अन्त में गृहिणी के पास जाकर नालिश की। गृहिणी ने कहा—तुम बच्ची पागल स्त्री हो। ब्राह्मण का लड़का कहीं केवट की लड़की व्याहता है? तुम्हें सब जलाती हैं, तुम भी जलती हो।

नयन-बहू फिर भी नहीं समझी। कहा, "अगर सही-सही व्याह हुआ हो?" गृहिणी ने कहा—अगर सही-सही हुआ होगा तो परछन करके घर में उतारूँगी, बेटे की बहू को दूर तो कर नहीं दूँगी।

इसी समय ब्रजेश्वर आया। नयन-बहू अवश्य भग गई। ब्रजेश्वर ने पूछा—माँ, क्या कह रही थीं तुम?

गृहिणी ने कहा—यही कह रही थी कि तू अगर फिर से व्याह करे तो फिर बहू को परछन करके घर पर उतारूँ।

ब्रजेश्वर अनमना हुआ। कोई उत्तर दिये बिना चला गया।

प्रदोष के समय कर्ता महाशय के पंखा झलते-झलते गृहिणी ने यह प्रसंग उठाया। कर्ता ने पूछा—तुम्हारी क्या इच्छा है?

गृहिणी—मैं सोचती हूँ कि सागर-बहू यहाँ नहीं रहती। नयन-बहू लड़के के योग्य बहू नहीं। अगर एक अच्छा देखकर

व्रज का व्याह कर दिया जाय तो वह मजे में रहे, हमें भी सुख हो।

कर्ता—तो लड़के का मन अगर वैसा समझ में आये तो मुझसे कहना। मैं घटक (विवाह लगानेवाला) बुलाकर देखकर एक अच्छा व्याह करा दूँगा।

गृहिणी—अच्छा, मैं मन समझकर देखूँगी।

मन समझने का भार दादी पर पड़ा। दादी ने विरह से सन्तप्त और विरह के प्रयासी अनेक राजपुत्रों की कथाएँ व्रजेश्वर को सुनाईं, परन्तु उनसे व्रजेश्वर का मन कुछ समझ में नहीं आया। तब दादी ने खुलकर पूछना शुरू किया। कुछ भी मालूम नहीं हो सका। व्रजेश्वर ने केवल कहा—माता-पिता की जो आज्ञा होगी, मैं पालन करूँगा।

फिर बात का बड़ा बतङ्गड़ नहीं हुआ।

तीसरा खण्ड

पहला परिच्छेद

वैशाख की शुक्ला सप्तमी आई, परन्तु देवी रानी के ऋणशोध का कोई उद्योग नहीं हुआ। हरवल्लभ अब अऋणी हैं। अगर वे चाहते तो अनायास ही रुपया इकट्ठा करके देवी का क़र्ज़ अदा कर सकते थे। परन्तु उस तरफ़ उन्होंने मन नहीं दिया। उन्हें इस सम्बन्ध में बिलकुल हाथ सिकोड़े हुए देखकर ब्रजेश्वर ने दो-चार दफ़े इस प्रसङ्ग को उठाया, परन्तु हरवल्लभ ने उन्हें मीठी बातों से बहला दिया। इधर वैशाख की शुक्ला सप्तमी प्रायः आ गई। सिर्फ़ दो-चार दिन रह गये हैं। तब ब्रजेश्वर रुपये के लिये पिता पर दबाव डालने लगे। हरवल्लभ ने कहा, अच्छा, इतने उतावले न हो। मैं रुपये की खोज में जाता हूँ। छठ को लौटूँगा। हरवल्लभ पालकी पर चढ़कर रसोइया, नौकर और दो लठैत साथ लेकर घर से निकले।

हरवल्लभ रुपये की खोज में गये सही, मगर तौर दूसरा था। वे सीधे रङ्गपुर जाकर कलक्टर साहब से मिले। तब कलक्टर ही शान्ति के रक्षक थे। हरवल्लभ ने उनसे कहा—मेरे साथ सिपाही दीजिए, मैं देवी चौधरानी को पकड़ा दूँगा। पकड़ा दे सका तो मुझे क्या पुरस्कार दीजिएगा? कहिए।

सुनकर साहब ख़ुश हुए। वे जानते थे, देवी चौधरानी डाकुओं की नेत्री है। वह पकड़ में आई तो दूसरे भी पकड़ में आ जायँगे। उन्होंने देवी को पकड़ने की बड़ी कोशिशें की थीं, किसी तरह सफल नहीं हो सके। अतएव, हरवल्लभ उस भयंकरी राक्षसी को पकड़ा देंगे, सुनकर साहब बहुत खुश हुए; पुरस्कार देने को स्वीकृत हुए। हरवल्लभ ने कहा, मेरे साथ पाँच सौ सिपाही भेजने की आज्ञा हो। साहब ने सिपाहियों के लिए हुक्म दिया। हरवल्लभ को साथ लेकर लेफ़्टीनेन्ट ब्रेनन सिपाहियों के साथ देवी को पकड़ने चले।

हरवल्लभ ने व्रजेश्वर से विशेष रूप से सुना था, ठीक उस घाट पर देवी मिलेगी। सम्भवत: देवी बजरे पर ही रहेगी। लेफ़्टीनेन्ट ब्रेनन इसलिए कुछ फ़ौज लेकर किश्ती से चले। इस तरह पाँच किश्तियाँ बहाव के अनुकूल देवी के बजरे को घेरने के लिए चलीं। लेफ़्टीनेन्ट साहब ने और भी कितने सिपाही छिपे तौर पर वनों से होकर जाने के लिए स्थल-मार्ग से भेजे। जहाँ देवी का बजरा रहेगा, हरवल्लभ ने कह दिया, वहीं किनारे वन में उन्होंने फ़ौज छिपा रक्खी। अगर देवी किश्तियों से घेरी जाकर स्थल-मार्ग से भागने की कोशिश करेगी, तो उसे फ़ौज से घेरकर पकड़ेंगे। एक और भागने का रास्ता था। किश्तियाँ बहाव से आयेंगी, दूर से किश्तयों को देखकर देवी बहाव-बहाव भाग सकती है, इसलिए लेफ़्टीनेन्ट ब्रेनन ने बाक़ी सिपाहियों को दो कोस बहाव के नीचे रहने के लिए भेज दिया। उन लोगों के रहने के लिए ऐसी

एक जगह बतला दी कि वहाँ त्रिस्रोता नदी इन सूखे दिनों में पैदल पार की जा सकती है। सिपाही वहाँ किनारे छिपे रहेंगे। बजरा देखकर पानी में उतरकर घेरेंगे।

संन्यासिनी महिला को पकड़ने के लिए इस तरह का विपुल आडम्बर हुआ। परन्तु सरकारी पक्षवालों ने इस आडम्बर को अकारण हुआ नहीं सोचा। देवी संन्यासिनी हो या न हो, उसकी आज्ञा के अधीन हज़ार सिपाही हैं, साहब लोग जानते थे। ये सिपाही बरकन्दाज़ थे। बहुत से समयों पर कम्पनी के सिपाहियों को इन बरकन्दाज़ों की लाठी की चोट से भागना पड़ा है, ऐसी कहावतें हैं। हाय, लाठी! तुम्हारे दिन चले गये! तुम नाचीज़ बाँस की लकड़ी हो सही, परन्तु शिक्षित हाथों में पड़ने पर तुम नहीं कर सकती थीं ऐसा काम नहीं था। तुमने कितनी तलवारों को दो-टूक कर दिया है। कितने ढाल और खञ्जरों के टुकड़े टुकड़े कर दिये हैं। हाय, बन्दूक़ और सङ्गीनें तुम्हारी मार से योद्धाओं के हाथों से गिर-गिर गई हैं। योद्धा टूटे हाथ लेकर भागे हैं। लाठी! तुम बङ्गाल में इज्ज़त-आबरू बचाती थीं, मान रखती थीं, धन रखती थीं, जन रखती थीं और सबका मन रखती थीं। मुसलमान तुम्हारे डर से त्रस्त थे, डाकू तुम्हारी जलन से भागे फिरते थे, नीलकर तुम्हारे भय से निरस्त था। तुम उस समय की पिनल कोड थीं—तुम पिनल कोड की तरह दुष्टों का दमन करती थीं, पिनल कोड की तरह शिष्टों का भी दमन करती थीं और पिनल कोड की तरह राम के अपराध से श्याम का सर फोड़ती थीं।

परन्तु पिनल कोड से बढ़कर तुम्हारी यह सरदारी थी कि तुम पर अपील नहीं चलती थी। हाय! तुम्हारी वह महिमा अब चली गई है। पिनल कोड ने तुम्हें खेदकर तुम्हारा आसन ग्रहण किया है—समाज-शासन-भार तुम्हारे हाथ से उसके हाथ में गया है। तुम, लाठी, अब लाठी नहीं, केवल बाँस की लकड़ी हो। छड़ीत्व को प्राप्त होकर स्यार और कुत्तों से डरनेवाले बाबुओं के हाथ की शोभा बढ़ाती हो. कुत्ते के भौकने से उन मक्खन-से हाथों से खुलकर गिर जाती हो। तुम्हारी वह महिमा अब नहीं रही। सुनते हैं, उस ज़माने में तुम उत्तम औषध थीं—मानसिक व्याधि के उत्तम चिकित्सकों के मुख से सुनते हैं—"मूर्खस्य लाठ्योपधिः।" अब मूर्ख की दवा है "बच्चा" "छौना।" इस पर भी रोग अच्छा नहीं होता। तुम्हारे सगोत्र सपिण्डगणों में बहुतों के गुण इस दुनिया में प्रकाशित हैं—डाट, फाची, खूँटी, खूँटे से लेकर श्रीनन्द-नन्दन की मोहिनी वंशी तक; सबके गुण समझता हूँ, परन्तु, लाठी! तुम्हारी तरह कोई नहीं। तुम अब नहीं, चली गई हो। मुझे भरोसा है कि तुम्हें अक्षय स्वर्ग मिला है; तुम इन्द्रलोक में जाकर नन्दनकानन की पुष्पभार से नत पारिजात की शाखा की ठेकनी बनी हो, देवकन्याएँ तुम्हारी चोटों से कल्पवृक्ष से अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष रूपी फल गिरा रही हैं। एक-आध फल जैसे इस पृथ्वी पर ढनगकर गिरे।

दूसरा परिच्छेद

जिसकी लाठी के डर से इतने सिपाहियों का समागम था उसके पास एक भी लठैत नहीं था। देवी उसी घाट पर है जस पर ब्रजेश्वर को क़ैद करके मँगाया था। अभी सन्ध्या पार ही हुई है। वह बजरा वैसा ही सजा हुआ है। सब साज बिलकुल वैसा है। वह किश्ता वहाँ नहीं है। उस पर जो पचास लठैत थे, वे भी नहीं। इसके अलावा बजरे पर एक भी मर्द नहीं—माझी, मल्लाह, रङ्गराज वग़ैरः कोई नहीं। परन्तु बजरे का मस्तूल खड़ा किया हुआ है—चार पाल चढ़ाये हुए हैं। हवा न बहती हुई होने के कारण पाल मस्तूल में जैसे लिपटे हुए हैं—बजरे में लङ्गर भी नहीं पड़ा हुआ है। सिर्फ़ रस्सी की दो लड़ों से बजरा किनारे खूँटे से बँधा हुआ है।

तीसरे, देवी ख़ुद उस तरह रत्नाभूषणों से भूषित और क़ीमती साड़ी पहने हुए नहीं, परन्तु एक दूसरे प्रकार की शोभा है। ललाट, कपोल, बाँह और हृदय सर्वाङ्ग सुगन्ध चन्दन से चर्चित है। चन्दन-चर्चित ललाट को घेरकर सुगन्ध पुष्पों की माला शिरोदेश की विशेष शोभा-वृद्धि किये हुए है। हाथों में फूलों के कङ्कन और एक भी गहना नहीं। पहनावे में वही मोटी साड़ी।

और आज देवी अकेली छत पर बैठी नहीं, पास दो और स्त्रियाँ बैठी हैं। एक निशि है, दूसरी दिवा। इन तीन स्त्रियों में जो बातचीत हो रही थी, उसके बीच से कहने से भी हानि नहीं।

दिवा अशिक्षिता है, यह पाठकों को याद रखना चाहिए वह कह रही थी —हाँ, परमेश्वर भी कहीं प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं ?

प्रफुल्ल ने कहा —नहीं, प्रत्यक्ष नहीं देख सकता कोई। परन्तु मैं प्रत्यक्ष देखने की बात नहीं कह रही थी—मैं प्रत्यक्ष करने की बात कह रही थी। प्रत्यक्ष छः तरह के हैं। तुम जिस प्रत्यक्ष देखने की बात कह रही थीं, वह आँखों-देखा प्रत्यक्ष है। मेरे गले की आवाज़ तुम सुन रही हो, मेरे गले की आवाज़ तुम्हारे कानों के प्रत्यक्ष है, अर्थात् कानों के प्रत्यक्ष होने का विषय हो रहा है। मेरे हाथ के फूल की गन्ध तुम्हारी नाक तक पहुँच रही है ?

दिवा—पहुँच रही है।

देवी—यह तुम्हारा घ्राणज प्रत्यक्ष हो रहा है। और मैं अगर तुम्हारे गाल में एक चाँटा कसूँ तो तुम मेरे हाथ को प्रत्यक्ष करोगी—वह त्वचा प्रत्यक्ष है। और इस समय निशि अगर तुम्हारे सर का आहार करे तो वह उसका रसना-प्रत्यक्ष होगा।

दिवा—बुरा प्रत्यक्ष नहीं होगा। परन्तु परमेश्वर को कोई देख भी नहीं सकता और उनकी बातें सुन भी नहीं सकता, सूँघ भी नहीं सकता, छू भी नहीं सकता और खा भी नहीं सकता। उन्हें प्रत्यक्ष करेगा भी किस तरह कोई ?

देवी—यह हुई पाँच तरह प्रत्यक्ष होने की बात। मैंने छः तरह प्रत्यक्ष होने की बात कही है। क्योंकि आँख, कान, नाक, जीभ और चमड़े के अलावा एक ज्ञानेन्द्रिय भी है, नहीं जानतीं ?

दिवा—क्या, दाँत ?

निशि—दुर, गाजमारी ! इच्छा होती है, घूँसे मारकर तेरी उस इन्द्रिय की पाटी की पाटी तोड़ दूँ ।

देवी—(हँसती हुई) आँख आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और हाथ-पैर आदि पाँच कर्मेन्द्रियाँ, और इन्द्रियों का राजा मन उभयेन्द्रिय है, अर्थात् मन ज्ञानेन्द्रिय भी है और कर्मेन्द्रिय भी। मन ज्ञानेन्द्रिय है, इसलिए मन से भी प्रत्यक्ष होता है। इसे मानस प्रत्यक्ष कहते हैं। ईश्वर मानस-प्रत्यक्ष होने के विषय हैं।

निशि—ईश्वरासिद्धेः—प्रमाणाभावात् ।

जिन्होंने सांख्य-प्रवचन-सूत्र और भाष्य पढ़ा है, वे निशि की इस व्यङ्ग्योक्ति का मर्म समझेंगे।

निशि देवी की एक प्रकार सहपाठिनी थी।

देवी ने जवाब दिया—सूत्रकारस्योभयेन्द्रियशून्यत्वात्—न प्रमाणाभावात् ।

दिवा—रक्खो अपना हावात्-भावात्—मैंने तो कभी परमेश्वर को मन के भीतर नहीं देखा।

देवी—फिर देखना ? आँख से प्रत्यक्ष करना ही देखना है, और किसी तरह का प्रत्यक्ष देखना नहीं। मानस-प्रत्यक्ष भी देखना नहीं। आँखों से देखे जानेवाले का विषय है रूप—रूप बहिर्विषय है। मन से प्रत्यक्ष होनेवाला अन्तर्विषय है मन से ईश्वर प्रत्यक्ष हो सकते हैं। ईश्वर को कोई देख नहीं सकता।

दिवा—कहाँ ? मैंने तो ईश्वर को कभी भी मन के भीतर किसी तरह प्रत्यक्ष नहीं किया।

देवी—आदमी की प्रत्यक्ष करनेवाली शक्ति स्वभावतः थोड़ी है; बिना मदद या सहारे के सब वस्तुएँ प्रत्यक्ष नहीं की जा सकतीं।

दिवा—प्रत्यक्ष करने के लिए फिर मदद की क्या बात ? देखो, यह नदी, जल, पेड़-पौधे, नक्षत्र, सब कुछ मैं बिना मदद के देख रही हूँ।

"सब नहीं—इसका एक उदाहरण दूँगी।" कहकर देवी हँसी।

हँसी का ढँग देखकर निशि ने पूछा—क्या ?

देवी कहने लगी—अँगरेज़ों के सिपाही मुझे आज पकड़ने आ रहे हैं, जानती हो ?

दिवा ने लम्बी साँस छोड़कर कहा—यह तो जानती हूँ।

देवी—सिपाहियों को प्रत्यक्ष किया है ?

दिवा—नहीं, मगर आने पर प्रत्यक्ष करूँगी।

मैं कह रही हूँ, आये हैं; परन्तु बिना मदद के प्रत्यक्ष नहीं कर पा रहीं। यह लो मदद।" यह कहकर देवी ने दिवा के हाथ में दूरबीन दी। ठीक जिस तरफ़ देखना होगा, दिखा दिया। दिवा ने देखा।

देवी ने पूछा—क्या देखा ?

दिवा—एक किश्ती ! उस पर बहुत से आदमी देख रही हूँ; सही है।

देवी—उस पर सिपाही हैं। एक और देख।

इस तरह देवी ने दिवा को पाँच किश्तयाँ दिखाईं अलग अलग स्थानों पर। निशि ने भी देखा। निशि ने पूछा,—किश्तियाँ रेती से लगा रक्खी हैं देखती हूँ। हमें पकड़ने आ रहे हैं परन्तु हमारे पास न आकर, किश्तियाँ किनारे क्यों लगा रक्खी हैं?

देवी—जान पड़ता है, स्थल मार्ग से जो सिपाही आनेवाले हैं, वे अभी नहीं आये। किश्तीवाले सिपाही उनकी प्रतीक्षा में हैं। स्थलवाले सिपाहियों के आने से पहले किश्तियाँ बढ़ाने पर मैं उतरकर स्थलमार्ग से भाग सकती हूँ, इस शंका से वे आगे नहीं बढ़ रहे।

दिवा—लेकिन हम लोग तो उन्हें देख रहे हैं। चाहें तो भाग सकते हैं।

देवी—वे यह नहीं जानते। वे नहीं जानते कि हम लोग दूरबीन रखते हैं।

निशि—बहन! जान बची रही तो किसी न किसी दिन पति से मिल सकती हो। आओ स्थल पर चढ़कर जान बचाओ, चलो। इस समय भी अगर स्थल पर सिपाही नहीं आये तो उस मार्ग से जान बचने का उपाय है।

देवी—अगर जान का इतना मोह होगा तो ये सब ख़बरें सुन समझकर यहाँ क्यों आई? आई तो तमाम आदमियों को बिदा क्यों किया? मेरे हज़ार बरकन्दाज़ हैं, उन सबको दूसरी जगह क्यों भेज दिया?

दिवा—हम अगर पहले जानते तो तुम्हें ऐसा काम न करने देते।

देवी—तुम्हारी ताक़त क्या है दिवा! मैंने जो कुछ निश्चय किया है, वह ज़रूर करूँगी। आज पति-दर्शन करूँगी, पति की आज्ञा लेकर दूसरे जन्म में उन्हें पाने की कामना करती हुई प्राण समर्पण करूँगी। तुम लोग मेरी बात मानना दिवा और निशि! मेरे पति जब लौटेंगे तब उनकी नाव पर चढ़कर उनके साथ चली जाना। मैं अकेली पकड़ाई दूँगी, मैं अकेली फाँसी पर चढ़ूँगी। इसी लिए बजरे से और सबको विदा कर दिया है। तब तुम लोग नहीं गईं। परन्तु मुझे यह भीख दो, मेरे पति की नाव पर चढ़कर भाग जाना।

निशि—धड़ पर सर जब तक है, तुम्हें नहीं छोड़ूँगी। मरना होगा तो एक जगह मरेंगे।

देवी—ये सब बातें अभी रहें। जो कह रही थी, ख़त्म कर लूँ। आँखों से जो प्रत्यक्ष नहीं कर पा रही थी, जैसे दूरबीन से प्रत्यक्ष किया, उसी तरह ईश्वर को मानस प्रत्यक्ष करने के लिए दूरबीन चाहिए।

दिवा—मन की और क्या दूरबीन होगी?

देवी—योग।

दिवा—क्या, वही न्यास, प्राणायाम कुम्भक, दुनिया का टिटम्बा—ढोंग।

देवी—उसे मैं योग नहीं कहती। योग सिर्फ़ अभ्यास है। परन्तु सभी अभ्यास योग नहीं। तुम अगर घी-दूध खाने का

अभ्यास डालो तो इसे योग नहीं कहूँगी। तीन ही अभ्यासों को योग कहती हूँ।

दिवा—कौन-कौन तीन ?

देवी—ज्ञान, कर्म और भक्ति। ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग।

तब तक निशि दूरबीन लेकर इधर-उधर देख रही थी। देखती देखती बोली—फ़िलहाल विघ्न-योग उपस्थित है।

देवी—कौनसा यह फिर ?—विघ्नयोग और कौनसा ?

निशि—एक डोंगी आ रही है। शायद अँगरेज़ों का गुप्तचर है।

देवी ने निशि के हाथ से दूरबीन लेकर डोंगी देखी। कहा—यही मेरा सुयोग है, वे आ रहे हैं, तुम लोग नीचे जाओ।

दिवा और निशि छत से उतरकर कमरे में गईं। डोंगी क्रमशः खेई जाकर बजरे में आकर भिड़ी। उस डोंगी में ब्रजेश्वर थे। ब्रजेश्वर कूदकर बजरे पर चढ़े। डोंगी दूर बाँध रखने की आज्ञा दी। डोंगीवाला डोंगी खे ले चला।

ब्रजेश्वर निकट आया तो उठकर खड़ी हो देवी ने घुटने टेककर प्रणाम किया और पैरों की धूल सर पर ली। फिर दोनों बैठे। ब्रजेश्वर ने कहा—आज रुपये नहीं ला सका। दो-चार दिन बाद दे सकूँगा शायद। दो-चार दिन बाद कब कहाँ तुमसे मुलाक़ात होगी, यह मालूम होना चाहिए।

"अब मुझसे मुलाक़ात नहीं होगी।" कहते कहते देवी का गला भर आया। देवी ने एक बार आँसू पोंछे—मेरे

साथ अब फिर मुलाक़ात नहीं होगी, परन्तु मेरा क़र्ज़ अदा करने का दूसरा उपाय है। जब सुभीता हो, वह रुपया ग़रीब दुखियों को बाँट दीजिएगा तो मुझे मिल जायगा।

ब्रजेश्वर ने देवी का हाथ पकड़ा। कहा—प्रफुल्ल! तुम्हारा रुपया—

ख़ाक रुपया। बात समाप्त नहीं हुई, मुँह की बात मुँह में रह गई। ज्यों ही ब्रजेश्वर ने 'प्रफुल्ल' कहकर हाथ पकड़ा कि प्रफुल्ल का दस साल का बँधा बाँध तोड़कर आँखों की अश्रुधारा छूटी। ब्रजेश्वर की ख़ाक रुपये की बात उस स्रोत में कहाँ बह गई। तेजस्विनी देवी रानी एक लड़की की तरह आठ-आठ आँसू रोई। ब्रजेश्वर के हाथ ढीले पड़े। वे मन ही मन सोचे हुए थे, यह पापिन डाका डालकर खाती है, इसके लिए एक बूँद भी आँसू नहीं गिराया जायगा। परन्तु आँसुओं को इतने विधि-निषेधों का ज्ञान नहीं। वे बिना बुलाये आये और ब्रजेश्वर की आँखों को भर दिया। ब्रजेश्वर ने सोचा, हाथ उठाकर आँसू पोंछूँगा तो पकड़ जाऊँगा। इसलिए आँसू नहीं पोंछे गये। आँसू नहीं पोंछे गये तो उन्होंने तालाब को छाप लिया। धारा गालों से बह-बहकर गिरने लगी। कुछ बूँदें प्रफुल्ल के हाथ पर टपकीं।

तब बालू का बाँध टूट गया। ब्रजेश्वर मन में यह सोचकर आये थे कि डाका डालने के लिए प्रफुल्ल को बहुत कुछ भला-बुरा कहेंगे, पापिनी कहेंगे, और दो-चार लम्बे-लम्बे ऐसे शब्द कहकर एक दफ़ा और ज़िन्दगी भर के लिए छोड़कर चले जायँगे।

परन्तु रोकर जिसका हाथ गीला कर दिया उसे लम्बी-चौड़ी बातें भी सुनायेंगे ?

आँखें पोंछकर ब्रजेश्वर ने कहा—,,देखो प्रफुल्ल, तुम्हारा रुपया मेरा रुपया है, उसे चुकाने के लिए मैं क्यों व्याकुल हूँगा ? परन्तु मैं बहुत व्याकुल ही हो गया हूँ। आज दस साल तक मैंने सिर्फ तुम्हें सोचा है। मेरे और दो स्त्रियाँ हैं, मैंने उन्हें इधर दस साल स्त्री नहीं सोचा, तुम्हें स्त्री जानता हूँ। क्यों, यह मैं तुम्हें समझा नहीं सकूँगा। सुना था, तुम नहीं हो। परन्तु मेरे लिए तुम थीं। मैं इसके बाद भी समझता था, तुम्हीं मेरी स्त्री हो—मन में और किसी के लिए जगह नहीं थी। सोचा था, नहीं कहूँगा, परन्तु कहने से कोई हानि नहीं—तुम मर गई हो, सुन कर मैं भी मरने चला था। अब सोचता हूँ, मरने से ही अच्छा होता ! तुम मर गई होती तो अच्छा होता, नहीं तो मैं ही मर गया होता। अब जो कुछ सुना है, समझा है, वह न सुनना पड़ता, न समझना पड़ता। आज दस साल की खोई रत्न तुम मिलीं; मुझे स्वर्ग-सुख से बढ़कर सुख होता। यह न होकर, प्रफुल्ल, तुम्हें पाकर मुझे मर्मान्तिक पीड़ा है।" यह कहकर एक घूँट पीकर, अपना सर दबाते हुए ब्रजेश्वर ने कहा—मन के मन्दिर में सोने की प्रतिमा गढ़ रक्खी थी—मेरे उसी प्रफुल्ल—मुँह में नहीं आता—उसी प्रफुल्ल की यह वृत्ति है। प्रफुल्ल ने कहा—क्या ? मैं डाका डालती हूँ ?

ब्रज—नहीं डालतीं ?

इसके जवाब में प्रफुल्ल एक बात कह सकती थी। जब ब्रजेश्वर के पिता ने जन्म के लिए प्रफुल्ल को घर से निकाल दिया था, तब प्रफुल्ल ने व्याकुल होकर ससुर से पूछा था, "मैं अन्न की कङ्गाल हूँ, तुम लोग निकाल दोगे तो किस तरह मेरी रोटियाँ चलेंगी ?" इस पर ससुर ने जवाब दिया था, "चोरी और डाकेज़नी करके खाना।" प्रफुल्ल मेधा-वाली स्त्री थी, यह बात नहीं भूली। भूलने की बात भी नहीं। आज ब्रजेश्वर ने प्रफुल्ल को डाकू कहकर कलाम कहा। आज प्रफुल्ल का वह जवाब था। प्रफुल्ल का उत्तर था, "मैं डाकू हूँ; लेकिन अब यह तिरस्कार क्यों ? तुम्हीं लोगों ने तो चोरी-डाकेज़नी करके रोटियाँ चलाने के लिए कहा था। मैं बड़ों का आदेश पाल रही हूँ।" ऐसा उत्तर रोक रखना ही यथार्थ पुण्य है। प्रफुल्ल ने यह पुण्य सञ्चित किया। यह बात मुँह में भी नहीं लाई। प्रफुल्ल ने पति के पास हाथ जोड़कर यह जवाब दिया—मैं डाकू नहीं। मैं तुम्हारे पास शपथ कर रही हूँ, मैंने कभी डाका नहीं डाला। कभी डाकेज़नी की एक कौड़ी नहीं ली। तुम मेरे देवता हो। मैं दूसरे देवता की पूजा करना सीख रही थी, नहीं सीख सकी। तुमने सब देवताओं की जगहें दख़ल कर ली हैं। तुम्हीं मेरे एकमात्र देवता हो। मैं तुम्हारे पास शपथ कर रही हूँ, मैं डाकू नहीं। लेकिन जानती हूँ, लोग मुझे डाकू समझते हैं। क्यों कहते हैं, यह भी जानती हूँ। वही बात तुम्हें मेरे पास सुननी होगी। वही बात सुनाऊँगी, इसलिए आज यहाँ आई हुई हूँ। आज न सुनने पर फिर सुनी नहीं जा सकेगी। सुनो, मैं कहती हूँ।

तब जिस दिन प्रफुल्ल ससुराल से निकाली गई थी, उस दिन से आज तक की अपनी कुल कथा निष्कपट होकर कह गई। सुनकर ब्रजेश्वर विस्मित, लज्जित और अत्यन्त आनन्दित हुआ, और महिमामयी स्त्री के सामने कुछ डरा भी। प्रफुल्ल ने बात समाप्त करके पूछा—मेरी इन बातों पर तुम्हें विश्वास हुआ ?

अविश्वास की जगह नहीं थी। प्रफुल्ल की हर बात ब्रजेश्वर की अस्थि-मज्जा तक पैठ चुकी थी। ब्रजेश्वर जवाब नहीं दे सके। परन्तु उनकी आनन्द से भरी कान्ति देखकर प्रफुल्ल समझी, विश्वास हुआ है। तब प्रफुल्ल कहने लगी, अब पैरों की धूल देकर इस जन्म के लिए मुझे बिदा दो, अब यहाँ देर न करो। सामने कोई विघ्न है। तुम्हें दस साल बाद पाकर अभी खुद कहकर तुम्हें बिदा कर रही हूँ, इससे समझना होगा, विघ्न बहुत मामूली नहीं। मेरी दो सखियाँ इसी नाव पर हैं। वे बड़ी गुणवती हैं। मैं भी उन्हें बहुत प्यार करती हूँ। अपनी नाव पर उन्हें ले जाओ। घर पहुँचकर वे जहाँ जाना चाहें, वहाँ भेज दो। मुझे जिस तरह याद रक्खा था, याद रखना। सागर जैसे मुझे न भूले।

ब्रजेश्वर कुछ देर तक चुपचाप सोचता रहा। फिर कहा—मैं कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ प्रफुल्ल, मुझे समझा दो। तुम्हारे इतने आदमियों में कोई नहीं। बजरे के माझी तक नहीं। सिर्फ़ दो स्त्रियाँ हैं। उन्हें भी बिदा करना चाहती हो। सामने विघ्न है, कह रही हो। मुझे रहने को मना कर रही हो, और इस जन्म में मुलाक़ात नहीं होगी, कहती हो; यह सब क्या है ? सामने कौनसा

विघ्न है ? मुझे बिना बतलाये मैं नहीं जाऊँगा। विघ्न क्या है, सुनने पर भी जाऊँगा या नहीं, यह भी नहीं कह सकता।

प्रफुल्ल—वे सब बातें तुम्हारे सुनने की नहीं।

व्रज—तो क्या मैं तुम्हारा कोई नहीं ?

ऐसे समय 'गम्', बन्दूक़ की एक आवाज़ हुई।

तीसरा परिच्छेद

बन्दूक़ की आवाज़ हुई, व्रजेश्वर की बात व्रजेश्वर के मुँह में रह गई। चौंककर दोनों-ने सामने देखा—देखा, दूर पाँच किश्तियाँ आ रही हैं, डाँड़ों की ताड़ना से पानी चाँदनी में चमक रहा है। देखते-देखते देख पड़ा, पाँचों किश्तियाँ सिपाहियों से भरी हुई हैं। स्थलमार्गवाले सिपाही आ पहुँचे हैं, इसी के संकेत पर बन्दूक़ की आवाज़ हुई है। सुनकर ही पाँचों किश्तियाँ खोल दी गई थीं। देखकर प्रफुल्ल ने कहा—अब एक मुहूर्त की देर न करो। अपनी डोंगी पर चढ़कर चले जाओ।

व्रज—क्यों? ये किश्तियाँ किसलिए हैं? बन्दूक़ किसलिए?

प्र०—बिना सुने नहीं जाओगे?

व्रज—किसी तरह नहीं।

प्र०—इन किश्तियों पर कम्पनी के सिपाही हैं। बन्दूक़ की आवाज़ कम्पनी के सिपाहियों ने स्थल से की है।

व्रज—क्यों इतने सिपाही इस तरफ़ आ रहे हैं? तुम्हें पकड़ने के लिए?

प्रफुल्ल चुप रही। व्रजेश्वर ने पूछा—तुम्हारी बात से मालूम हो रहा है, तुम पहले से ही यह संवाद जानती थीं।

प्र०—जानती थी। मेरे चर सब जगह हैं।

ब्रज—इस घाट पर आकर मालूम किया है या पहले से मालूम था ?

प्र०—पहले से मालूम था।

ब्रज—तो जान-बूझकर यहाँ क्यों आईं ?

प्र०—तुम्हें एक दफ़ा और देखूँगी इसलिए।

ब्रज—तुम्हारे आदमी कहाँ हैं ?

प्र०—उन्हें बिदा कर दिया है। वे क्यों मेरे लिए मरें ?

ब्रज—पकड़ाई दोगी, निश्चय कर लिया है ?

प्र०—अब बचकर क्या होगा ? तुमसे मुलाक़ात हुई, तुम्हें मन की बात कही, तुम मुझे प्यार करते हो, सुना। मेरे पास जो कुछ धन था, वह भी दान करके समाप्त कर दिया है। अब और बचकर कौन-सा काम करूँगी या कौन-सी साध मिटाऊँगी ? अब और क्यों बचूँ ?

ब्रज—बचकर मेरे घर चलकर मेरी गृहस्थी सँभालोगी।

प्र०—सच कह रहे हो ?

ब्रज—तुमने मेरे पास शपथ की है, मैं भी तुम्हारे पास शपथ करता हूँ। आज अगर तुम प्राण रक्खोगी तो मैं तुम्हें अपनी गृहिणी—घर की मालकिन—बनाऊँगा।

प्र०—मेरे ससुर क्या कहेंगे ?

ब्रज—मैं अपने पिता से समझौता कर लूँगा।

प्र०—हाय, यह बात कल क्यों नहीं सुनी ?

ब्रज—कल सुनतीं तो क्या होता ?

प्र०—तो किसकी मजाल थी जो मुझे पकड़ता ?

व्रज—अब ?

प्र०—अब और उपाय नहीं। अपनी डोंगी मँगाओ—निशि और दिवा को लेकर जल्द जाओ।

व्रजेश्वर ने डोंगी के लिए आवाज दी। पास आने पर डोंगीवालों से कहा—तुम लोग जल्द भागो; वह देखो, कम्पनी के सिपाहियों की किश्तियाँ आ रही हैं। तुम्हें देखने पर वे लोग बेगार में पकड़ेंगे। जल्द भागो, मैं नहीं जाऊँगा, यहीं रहूँगा।

डोंगी के माँझी ने दूसरी बात नहीं की, उसी उक्त डोंगी खोलकर नौ-दो ग्यारह हुआ। व्रजेश्वर पहचाने आदमी थे, किराये की चिन्ता नहीं हुई।

डोंगी चली गई देखकर प्रफुल्ल ने कहा—तुम नहीं गये ?

व्रज—क्यों, तुम मरना जानती हो, मैं नहीं जानता ? तुम मेरी स्त्री हो, मैं तुम्हें सौ बार छोड़ सकता हूँ। परन्तु मैं तुम्हारा पति हूँ, विपत्ति के समय मैं ही धर्म से तुम्हारा रक्षक हूँ। मैं बचा नहीं सकूँगा, इसी लिए क्या विपत्ति के समय तुम्हें छोड़कर चला जाऊँगा ?

"तो इसी लिए स्वीकार करती हूँ कि जान बचाने का कोई उपाय अगर हो तो वह मैं करूँगी।" यह कहते-कहते प्रफुल्ल ने आकाश के कोने में निगाह डाली। जो कुछ देखा, उससे जैसे कुछ भरोसा हुआ। लेकिन उसी वक्त हताश होकर बोली—लेकिन मेरी जान रहेगी तो एक दूसरा अमङ्गल होगा।

ब्रज—कौन-सा ?

प्र०—यह बात तुमसे नहीं कहूँगी, सोचा था। परन्तु अब बिना कहे बनती भी नहीं। इन सिपाहियों के साथ मेरे ससुर हैं। मैं पकड़ी न जा सकी तो उनके सर विपत्ति टूट सकती है।

ब्रजेश्वर काँपा, सर पर करावात किया। कहा—क्या वही गोइन्दा हैं ?

प्रफुल्ल चुप रही। ब्रजेश्वर के समझने में बाक़ी नहीं रहा। यहाँ आज रात को देवी चौधरानी से मुलाक़ात होगी, यह बात हरवल्लभ ने ब्रजेश्वर से सुनी थी। किसी दूसरे से ब्रजेश्वर ने यह बात नहीं कही। देवी की भी ऐसी गूढ़ मन्त्रणा है, कि दूसरे के कान तक नहीं पहुँच सकती। विशेषत: देवी के इस घाट के लिए चलने से पहले कम्पनी के सिपाही रङ्गपुर से चल चुके थे, सन्देह नहीं ! नहीं तो इसी बीच न पहुँच जाते। और इससे पहले ही, हरवल्लभ कहाँ जा रहे हैं किसी से कहे बग़ैर लम्बी यात्रा की थी, आज भी नहीं लौटे। बात समझने में देर नहीं हुई। इसी लिए हरवल्लभ ने रुपया चुकाने की कोई कोशिश नहीं की। फिर भी ब्रजेश्वर नहीं भूला—

"पिता स्वर्ग: पिता धर्म: पिता हि परमं तप:।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवता: ॥"

ब्रजेश्वर ने प्रफुल्ल से कहा—मैं मरूँ कोई हानि नहीं। तुम्हारे मरने पर मेरे मरने से अधिक होगा, परन्तु मैं देखने नहीं आऊँगा।

तुम्हें अपनी रक्षा से पहले, मेरे तुच्छ प्राणों की रक्षा से पहले, मेरे पिता की रक्षा करनी होगी।

प्र०—इसके लिए चिन्ता न कीजिए। मेरी रक्षा नहीं होगी। अतएव उनके लिए कोई डर नहीं। वे तुम्हें बचाना चाहेंगे तो बचा सकेंगे। अस्तु, तुम्हारे मन के सन्तोष के लिए मैं यह भी स्वीकार करती हूँ कि उनके अमङ्गल की सम्भावना के रहते मैं अपनी रक्षा का कोई उपाय नहीं करूँगी। तुम्हारे कहने पर भी न करती, न कहने पर भी न करती। तुम निश्चिन्त रहो।

देवी ने ये बातें हृदय से कहीं। हरवल्लभ ने प्रफुल्ल का सर्वनाश किया था, अब हरवल्लभ देवी का सर्वनाश करने को उद्यत है, फिर भी देवी उसका मङ्गल चाहती है। क्योंकि प्रफुल्ल निष्काम है। जिसका धर्म निष्काम है, उसे यह ख़बर नहीं रहती कि किसके कल्याण की खोज उसने की। कल्याण होने से ही हुआ।

परन्तु इसी समय किनारे के जङ्गल से तुरही की गम्भीर ध्वनि हुई। दोनों आदमी चौंक उठे।

—

चौथा परिच्छेद

देवी ने बुलाया—निशि !

निशि छत के ऊपर आई।

देवी—वह किसकी भेरी है ?

निशि—दाढ़ीवाले बाबाजी की जान पड़ती है।

देवी—रङ्गराज की ?

निशि—वैसी ही तो है।

देवी—वह क्या ? मैंने रङ्गराज को सुबह देवीगढ़ भेजा था।

निशि—जान पड़ता है, रास्ते से लौट आये हैं।

देवी—रङ्गराज को बुलाओ।

व्रजेश्वर ने कहा—भेरी की आवाज़ बहुत दूर से हुई है। यहाँ से पुकारने पर आवाज़ नहीं पहुँचेगी। मैं उतरकर भेरीवाले को खोज ला रहा हूँ !

देवी ने कहा—कुछ नहीं करना होगा। तुम ज़रा नीचे जाकर देवी का कौशल देखो।

निशि और व्रजेश्वर नीचे आये। नीचे जाकर निशि ने एक वंशी निकाली। निशि गाने-बजाने में बड़ी दक्ष है। यह शिक्षा राजभवन में हुई थी। निशि ही देवी की वीणा की उस्ताद है। वंशी बजाती हुई निशि ने मलार में तान लगाई।

बिना देर किये रङ्गराज बजरे पर आया और देवी को आशीर्वाद किया।

इसी समय ब्रजेश्वर ने निशि से कहा—तुम छत पर जाओ। तुम्हारे सामने शायद कोई बातचीत छिपाई नहीं जायगी। क्या बातें होती हैं, सुनकर मुझसे आकर सब कहो।

निशि ने मञ्जूर कर लिया और कमरे के बाहर गई। बाहर निकलकर फिर भीतर आकर ब्रजेश्वर से कहा—आप ज़रा बाहर आकर देखिए।

ब्रजेश्वर ने मुँह निकालकर देखा। देखा, जङ्गल के भीतर से अगणित मनुष्य निकल रहे हैं। ब्रजेश्वर ने निशि से पूछा—ये कौन हैं? सिपाही?

निशि ने कहा—जान पड़ता है, वे बरकन्दाज हैं। रङ्गराज लाया होगा।

देवी भी वह मनुष्यों की क़तार देख रही थी। ऐसे समय रङ्गराज ने आकर आशीर्वाद दिया। देवी ने पूछा—तुम यहाँ क्यों रङ्गराज?

रङ्गराज ने पहले कोई जवाब नहीं दिया। देवी ने फिर कहा—मैंने सुबह तुम्हें देवीगढ़ भेजा था। वहाँ क्यों नहीं गये? मेरी बात क्यों नहीं मानी तुमने?

रङ्ग०—मैं देवीगढ़ जा रहा था, रास्ते में महाराज से मुलाक़ात हो गई।

देवी—भवानी महाराज से?

रङ्ग०—उनसे सुना, कम्पनी के सिपाही आपको पकड़ने आ रहे हैं। इसी लिए हम दोनों बरकन्दाज़ इकट्ठे करके ले आ रहे हैं। बरकन्दाज़ों को जङ्गल में छिपाकर मैं किनारे बैठा था। किश्तियाँ आ रही हैं, देखकर मैंने भेरी बजाकर संकेत किया है।

देवी—उस जङ्गल में भी सिपाही हैं?

रङ्ग०—उन्हें हम लोगों ने घेर लिया है।

देवी—महाराजकहाँ हैं?

रङ्ग०—उन्हीं बरकन्दाज़ों को लेकर निकल रहे हैं।

देवी—तुम लोगों ने कितने बरकन्दाज़ साथ लिये हैं?

रङ्ग०—हज़ार के लगभग होंगे।

देवी—सिपाही कितने हैं?

रङ्ग०—सुना है, पाँच सौ।

देवी—इन पन्द्रह सौ आदमियों की लड़ाई होने पर मरेंगे कितने?

रङ्ग०—हाँ, दो चार सौ, मरने पर, मर सकते हैं।

देवी—महाराज से जाकर कहो और तुम भी सुनो, तुम लोगों के इस आचरण से मुझे आज हार्दिक दुःख पहुँचा है।

रङ्ग०—क्यों, माँ?

देवी—एक स्त्री के प्राणों के लिए तुम इतने आदमी मरने का संकल्प किये हुए हो, तुम्हें क्या धर्म का कुछ भी ज्ञान नहीं? मेरी उम्र अगर समाप्त हो गई है, मैं अकेली मरूँगी, मेरे लिए चार सौ आदमी क्यों जान देंगे? मुझे क्या तुम लोगों ने ऐसी नाचीज़

समझ लिया है कि मैं इतने आदमियों की जान लेकर अपनी जान बचाऊँगी ?

रङ्ग—आपके बचने पर बहुत से आदमियों की जान रहेगी।

गुस्से और घृणा से अधीर होकर देवी ने कहा "छिः"। इस धिक्कार से रङ्गराज का सर झुक गया। उसने सोचा कि पृथ्वी फटे, मैं उसमें समा जाऊँ।

देवी तब आँखें फाड़े हुए, घृणा से फड़कते काँपते होठों से कहने लगी—सुनो रङ्गराज! महाराज से जाकर कहो, इसी वक़्त कुल बरकन्दाज़ों को लौटा ले जायँ। छन की देर हुई कि मैं इस पानी में कूदकर डूबूँगी। मुझे कोई पकड़ नहीं रख सकेगा।

रङ्गराज इतना सा हो गया। कहा—मैं चला। महाराज से ये सब बातें कहूँगा। वे जो कुछ अच्छा समझेंगे, करेंगे। मैं दोनों का आज्ञाकारी हूँ।

रङ्गराज चला गया। निशि ने छत पर खड़े हुए यह सब सुना था। रङ्गराज के चले जाने पर उसने देवी से कहा—अच्छा अपनी जान को लेकर तुम्हारी जो खुशी, कर सकती हो, किसी के दख़ल देने की कोई बात नहीं, पर तुम्हारे पति आज तुम्हारे साथ हैं, उनके लिए भी तुमने नहीं सोचा ?

देवी—सोचा है, बहन! सोचकर कुछ कर नहीं सकी। सिर्फ़ ईश्वर का भरोसा है। जो कुछ होना है, होगा। लेकिन कुछ भी

हो, निशि, एक बात तथ्य है। मुझे कोई अधिकार नहीं कि अपने पति की जान बचाने के लिए इतने आदमियों की मैं जान लूँ। मेरे पति मेरे लिए ही बड़े आदर के हैं, उनके कौन हैं ?

मन ही मन निशि ने देवी को धन्यवाद दिया। सोचा, इसीने सार्थक निष्काम धर्म सीखा है। इसके साथ मरकर भी सुख है।

निशि ने जाकर व्रजेश्वर को कुल बातें सुनाईं। व्रजेश्वर प्रफुल्ल को अपनी स्त्री ही नहीं सोच सके, मन ही मन कहा, यथार्थ देवी ही है। मैं नराधम हूँ, मै और इसे डाकू कहकर बुरे कलाम कहने चला था।

इस तरफ़, पाँच तरफ़ से पाँच किश्तियाँ बजरे के नज़दीक आने लगीं। प्रफुल्ल ने उधर निगाह भी नहीं डाली। पत्थर की मूर्ति की तरह, न-हिलती-डुलती हुई, छत पर बैठी रही। प्रफुल्ल किश्तियाँ नहीं देख रही थी, बरकन्दाज़ नहीं देख रही थी, दूर आकाश के कोने में उसकी निगाह लड़ रही थी। आकाश के कोने में एक छोटा बादल बहुत देर से देख पड़ रहा था। प्रफुल्ल उसे ही देख रही थी। देखते-देखते जान पड़ा, वह कुछ बढ़ा। तब "जय जगदीश्वर" कहकर प्रफुल्ल छत से उतरी।

प्रफुल्ल को भीतर आते हुए देखकर निशि ने पूछा—अब क्या करोगी ?

प्रफुल्ल ने कहा—अपने पति को बचाऊँगी।

निशि—और तम ?

मेरी बात अब और न पूछो। मैं जो कुछ कहती हूँ, जो कुछ करती हूँ, अब उसमें सावधानी से मन लगाओ। तुम्हारे मेरे भाग्य में जो भी हो, पति को बचाना है, दिवा को बचाना है, ससुर को बचाना है।" यह कहकर देवी ने एक शङ्ख लेकर बजाया।

निशि ने कहा—फिर भी अच्छा है।

देवी ने कहा—भला है, बुरा है, सोचकर देखो। जो-जो कुछ करना होगा, तुमसे कहे देती हूँ। तुम पर सब निर्भर है।

पाँचवाँ परिच्छेद

चींटियों की पाँत की तरह बरकन्दाज़ों का दल त्रिस्रोता के किनारे-वाले वनों से निकलने लगा। सर पर लाल पगड़ी, काँछा चढ़ाये, ख़ाली पैर—पानी में लड़ाई लड़नी होगी, इसलिए कोई जूते नहीं ले आया। सबके हाथों में ढाल और बल्लम हैं। किसी-किसी के बन्दूक़ है। लेकिन बन्दूक़वाला हिस्सा थोड़ा है। सभी की पीठ से लाठी बँधी हैं। यह बङ्गाल का जातीय हथियार है। बङ्गाली इसका यथार्थ उपयोग जानते थे। लाठी छोड़कर ही बङ्गाली बे-जान हो गये हैं।

बरकन्दाज़ों ने देखा, किश्तियाँ प्रायः आ पहुँची हैं—बजरे को घेरेंगी। बरकन्दाज़ दौड़े; "रानी जी की जय" कहकर वे भी बजरे को घेरने चले। उन लोगों ने आकर पहले बजरा घेरा। किश्तियों ने उन्हें घेरा। और जिस वक्त शङ्ख बजा, ठीक उसी समय कुछ बरकन्दाज़ आकर बजरे पर चढ़े। वे माँझी-मल्लाह हैं, नाव खेने का काम करते हैं, ज़रूरत पर लाठी-बल्लम भी चलाते हैं। उन लोगों ने फ़िलहाल लड़ने की कोई इच्छा ज़ाहिर नहीं की। डाँड़ों पर, पतवार पर, पालों की रस्सियाँ और लग्गियाँ पकड़कर सब अपनी-अपनी जगह बैठे रहे। और भी बहुत से बरकन्दाज़ बजरे पर चढ़े। तीन-चार सौ बरकन्दाज़ किनारे रहे। वहीं से धनुषों

पर बड़े-बड़े तीर चलाने लगे। कुछ सिपाही किश्ती से उतरकर बन्दूक़ पर सङ्गीन चढ़ाकर उन पर टूटे। जो बरकन्दाज़ बजरा घेरकर खड़े थे, बाक़ी सिपाही उन पर झपटे। सब जगह सम्मुख-समर होने लगा। तब वारें, चोटें, चिल्लाहट, बन्दूकों की धड़ाधड़, लाठियों की ठकाठक, बड़ा हुल्लड़ मचने लगा। कोई किसी की आवाज़ नहीं सुन पा रहा। कोई किसी जगह जमकर नहीं रह सकता।

दूर से लड़ाई होती तो सिपाहियों के मुक़ाबले लठैत देर तक न टिकते। क्योंकि दूर की लड़ाई में लाठी काम नहीं देती। परन्तु किश्तियों पर रहने की वजह हवा में सिपाहियों को बड़ी असुविधा हुई। जो लोग किनारे उतरकर लड़ रहे थे, वे सङ्गीनों के सामने लठैतों को हटाने लगे। परन्तु जो पानी से लड़ रहे थे, वे बरकन्दाज़ों की चोटों से सर और हाथ-पैर तोड़कर क़ाबू में आ रहे थे।

प्रफुल्ल के नीचे आने के कुछ ही समय बाद से यह घटना शुरू हो गई थी। प्रफुल्ल ने सोचा कि या तो भवानी महाराज के पास मेरी बात नहीं पहुँची, या उन्होंने मेरी बात नहीं रक्खी। उन्होंने सोचा है, मैं मर नहीं सकूँगी। अच्छा, वे मेरा काम भी देखें।

देवी की रानीगरी से कुछ सुन्दर गुण उसमें पैदा हुए थे। उनमें एक यह कि जिस सामग्री की किसी तरह ज़रूरत हो सकती है, उसे पहले से सँभालकर हाथ के पास रखती थी। इस गुण का काफ़ी परिचय मिल चुका है। देवी को इस समय हाथ के

पास ही सफ़ेद झण्डा मिला। उस सफ़ेद झण्डे को बाहर ले जाकर अपने हाथ ऊँचा उठाकर पकड़े रही।

उस झण्डे को देखते ही लड़ाई एक साथ बन्द हो गई। जो जहाँ था, वह वहीं हथियार लिये चुपचाप खड़ा रह गया। आँधी-तूफ़ान जैसे एकाएक रुक गया। प्रमत्त समुद्र जैसे अकस्मात् शान्त झील में बदल गया।

देवी ने देखा, पास ही ब्रजेश्वर है। इस लड़ाई में देवी को बाहर आते देखकर ब्रजेश्वर भी साथ-साथ आया था। देवी ने उससे कहा, तुम यह झण्डा इसी तरह पकड़े रहो। मैं भीतर जाकर निशि और दिवा से एक परामर्श करूँगी। अगर यहाँ रङ्गराज आये, उससे कहना, वह दरवाजे से मेरी आज्ञा ले।

यह कहकर देवी ब्रजेश्वर के हाथ सफ़ेद झण्डा देकर चली गई। ब्रजेश्वर झण्डा उठाये खड़ा रहा। इसी समय वहाँ रङ्गराज आया। ब्रजेश्वर के हाथ में सफ़ेद झण्डा देखकर आँखें लाल कर रङ्गराज ने कहा—तुमने किसके हुक्म से सफ़ेद झण्डा दिखलाया?

ब्रज—रानीजी के हुक्म से।

रङ्ग—रानीजी का हुक्म? तुम कौन हो?

ब्रज—पहचान नहीं पाते?

कुछ नज़र गड़ाकर रङ्गराज ने कहा—पहचाना। तुम ब्रजेश्वर बाबू हो। यहाँ क्या सोचकर? बाप-बेटे एक ही काम से हो क्या? कोई इसे बाँधो।

रङ्गराज ने सोचा, हरवल्लभ की तरह देवी को पकड़ा देने के लिए किसी बहाने व्रजेश्वर बजरे के अन्दर आया है। उसकी आज्ञा मिलने पर दो आदमी व्रजेश्वर को बाँधने आये। व्रजेश्वर ने कोई आपत्ति नहीं की। कहा, मुझे बाँधो, इसमें हानि नहीं; परन्तु एक बात समझा दो। सफेद झण्डा देखकर ही दोनों दलों ने लड़ाई क्यों बन्द कर दी?

रङ्गराज ने कहा—नाक से दूध गिरता है न? जानते नहीं, सफेद झण्डा दिखाने पर अँगरेज़ फिर लड़ते नहीं।

व्रज—यह मैं नहीं जानता था। लेकिन, मैंने जानकर दिखाया हो या न जानकर दिखाया हो, रानीजी के हुक्म के मुआफ़िक़ सफेद झण्डा दिखाया है या नहीं, तुम न हो पूछ आओ। और—तुम्हारे लिए भी आज्ञा है कि तुम दरवाज़े से रानी जी की आज्ञा लोगे।

रङ्गराज बराबर कमरे के दरवाजे तक गया। कमरे का दरवाजा बन्द है, देखकर बाहर से पुकारा—रानी मा!

भीतर से जवाब आया—कौन, रङ्गराज?

रङ्ग०—जी, हाँ। एक सफेद झण्डा हमारे बजरे से दिखाया गया है, लड़ाई इसी लिए रुकी हुई है।

भीतर से—वह मेरी ही आज्ञा के अनुसार हुआ है। अब तुम वह सफेद झण्डा लेकर लेफ्टीनेन्ट साहब के पास जाओ। जाकर कहो कि लड़ाई की आवश्यकता नहीं, देवी रानी पकड़ाई देंगी।

रङ्ग०—मेरा शरीर रहते यह किसी तरह भी नहीं होगा।

देवी—शरीर देकर भी मेरी रक्षा नहीं कर सकोगे।

रङ्ग०—फिर भी शरीर दूँगा।

देवी—सुनो, मूर्ख की तरह गुल न मचाओ। तुम लोग जान देकर मुझे बचा नहीं सकोगे। सिपाहियों की इन बन्दूकों के सामने लाठी-सोंटे क्या करेंगे?

रङ्ग०—क्या नहीं करेंगे?

देवी—जो भी करें, अब एक बूँद ख़ून गिरने से पहले मैं जान पर खेलूँगी। बाहर निकलकर गोली के सामने खड़ी हूँगी। रख नहीं सकोगे। बल्कि अभी मैंने पकड़ाई दी तो भागने की उम्मीद रही। बल्कि इस वक्त अपनी-अपनी जान बचाकर सुभीते के मुआफ़िक़ जिस तरह मैं क़ैद से छुटकारा पाऊँ, वह कोशिश करो। मेरे बहुत रुपया है। कम्पनी के आदमी रुपये के ग़ुलाम हैं, मेरे छुटकारे की चिन्ता क्या है?

देवी ने एक क्षण के लिए भी नहीं सोचा कि रिश्वत देकर भागेंगी। इस तरह भागने की इच्छा भी नहीं थी। यह सिर्फ़ रङ्गराज को चकमा दे रही थीं। उनके मन के भीतर जो दूर की तरकीब लड़ रही थी, वह रंगराज की समझ से परे थी; इसलिए रंगराज को वह तरकीब नहीं बताई। सरल भाव से अँगरेज़ों को पकड़ाई देंगी, यह निश्चय किया था। साथ यह भी समझी थीं कि अँगरेज़ अपनी अक़्ल के पीछे सब मिट्टी में मिलायेंगे। यह भी निश्चय किया था कि दुश्मन को कोई नुक़सान न पहुँचायेंगी।

बल्कि दुश्मन को आगाह कर देंगी। पर पति, ससुर और सखियों के उद्धार के लिए जो कुछ अवश्य कर्तव्य है, वह भी करेंगी। जो जो कुछ होगा, देवी जैसे दर्पण के भीतर सब देख रही थीं।

रंगराज ने कहा—जो कुछ देकर कम्पनी के आदमियों को वश में कीजिएगा, वह तो बजरे में ही है। आपने पकड़ाई दी तो अँगरेज़ बजरा भी ले लेंगे।

देवी—यही रोक लगाना। कहना, देवी रानी पकड़ाई देंगी, परन्तु बजरा नहीं दिया जायगा। बजरे पर जो कुछ है, उसका कुछ भी नहीं दिया जायगा। बजरे पर जो लोग हैं उनमें से किसी को वे पकड़ नहीं सकेंगे। इसी नियम पर देवी रानी पकड़ाई दे सकती हैं।

रंग०—अँगरेज़ अगर न सुनें, बजरा लूटने आयें?

देवी—मना करना, बजरे पर न आयें, बजरा न छुएँ। कहना कि तब अँगरेज़ों के लिए विपत्ति आ सकती है। बजरे पर क़दम रखने पर मैं पकड़ाई नहीं दूँगी। जिस मुहूर्त अँगरेज़ कोई बजरे पर चढ़ेगा, उसी वक़्त लड़ाई फिर छिड़ेगी, समझे। मेरी बात उन्हें मञ्जूर होगी तो उनमें किसी को यहाँ आना नहीं होगा, मैं ख़ुद उनकी किश्ती पर जाऊँगी।

रङ्गराज समझा, भीतर कोई गहरा मतलब है। उसने दूतपना स्वीकार किया। तब देवी ने पूछा—भवानी महाराज कहाँ हैं?

रङ्ग०—वे किनारे बरकन्दाज़ लेकर लड़ रहे हैं। मेरी बात नहीं मानी। मालूम होता है, अब भी वहीं हैं।

देवी—पहले उनके पास जाओ। कुल बरकन्दाज़ लेकर नदी के किनारे-किनारे अपनी जगह जाने के लिए कहो। कहना, बजरे के आदमी रह जाने पर ही मेरे लिए बहुत होगा। और कहना, मेरी रक्षा के लिए अब लड़ाई की ज़रूरत नहीं—मेरी रक्षा के लिए भगवान् ने उपाय कर दिया है। इस पर अगर वे एतराज़ करें तो आकाश की तरफ़ देखने के लिए कहना, वे समझ जायँगे।

रङ्गराज ने ख़ुद आकाश की तरफ़ निगाह उठाकर देखा। देखा, वैशाख की नवीन मेघमाला से आकाश अन्धकार होता आ रहा है।

रङ्गराज ने कहा—माँ, मैं एक और आज्ञा की प्रार्थना करता हूँ। आज का गोइन्दा हरवल्लभ राय है। उसके लड़के व्रजेश्वर को नाव पर देखा है। मतलब बुरा है, इसमें सन्देह नहीं। उसे बाँध रखना चाहता हूँ।

सुनकर निशि और दिवा खिलखिलाकर हँसने लगीं। देवी ने कहा—बाँधना मत। अभी एकान्त में छत पर बैठे रहने के लिए कहो। बाद को जब दिवा उतरने का हुक्म देगी तब उतरेंगे।

आदेशानुसार रङ्गराज ने पहले व्रजेश्वर को छत पर बैठाला। फिर भवानी महाराज के पास गया और देवी ने जो कुछ कहने के लिए कहा था, कहा। रङ्गराज ने बादल दिखाया, भवानी महाराज ने देखा। भवानी और एतराज़ न करके पानी और किनारे के बरकन्दाज़ों को इकट्ठा कर त्रिस्रोता के किनारे-किनारे अपनी जगह के लिए रवाना हुए।

इधर दिवा और निशि, इस अवकाश में, बाहर आकर बरकन्दाज़ वेशवाले डाँड़ी और माझियों से चुपचाप कुछ कह गईं।

छठा परिच्छेद

इधर भवानी महाराज को बिदाकर रङ्गराज सफ़ेद झण्डा हाथ में लिये पानी में उतरकर लेफ़्टीनेन्ट साहब की किश्ती पर चढ़ा। हाथ में सफ़ेद निशान देखकर किसी ने कुछ नहीं कहा। किश्ती पर चढ़ने पर साहब ने उससे कहा—तुम लोगों ने सफ़ेद निशान दिखलाया है, पकड़ाई दोगे ?

रङ्ग०—हम लोग क्या पकड़ाई देंगे ? जिन्हें पकड़ने आये हैं, वही पकड़ाई देंगी, यही बात कहने आया हूँ।

साहब—देवी चौधरानी पकड़ाई देंगी ?

रंग०—देंगी। यही कहने के लिए मुझे भेजा है।

साहब—और तुम लोग ?

रंग०—हम और कौन ?

साहब—देवी चौधरानी के दल वाले।

रंग०—हम पकड़ाई नहीं देंगे।

साहब—मैं दल-समेत पकड़ने आया हूँ।

रंग०—ये दलवाले कौन-कौन हैं ? किस तरह इन हज़ार बरकन्दाज़ों में दल-बेदल पहचानेंगे ?

जब रंगराज ने यह बात कही तब तक भवानी महाराज बरकन्दाज़ सेना लेकर चले नहीं गये। जाने की तैयारी कर रहे थे। साहब

ने कहा—ये हज़ार बरकन्दाज़ सभी डाकू हैं क्योंकि ये लोग डाकुओं की तरफ़ से सरकार के विरुद्ध युद्ध कर रहे हैं।

रंग०—वे युद्ध नहीं करेंगे, चले जा रहे हैं, देखिए।

साहब ने देखा, बरकन्दाज़ सेना भागने का उद्योग कर रही है। साहब भभकी दिखाते हुए गरजकर बोले—क्या तुम लोग सफ़ेद झण्डा दिखाने के बहाने भाग रहे हो?

"साहब, तुमने पकड़ा कब जो हम भाग रहे हैं? अभी भी कोई भागा नहीं। पकड़ सकते हो, पकड़ो। सफ़ेद झण्डा फेंके दे रहा हूँ।" यह कहकर रङ्गराज ने सफ़ेद झण्डा फेंक दिया। परन्तु सिपाही लोग साहब की आज्ञा न पाकर निश्चेष्ट रहे।

साहब सोच रहे थे, उनके पीछे दौड़ना व्यर्थ है। पीछे लगने पर वे घने जङ्गल में घुसेंगे। एक तो रात है, इस पर बादल हैं; जंगल में घना अँधेरा है, सन्देह नहीं। मेरे सिपाही राहें नहीं पहचानते, बरकन्दाज़ पहचानते हैं। इसलिए उन्हें पकड़ना सिपाहियों का काम नहीं। फलतः साहब ने वह मतलब छोड़ दिया। कहा—जायँ, उन्हें मैं नहीं चाहता। जो बात हो रही थी, वही हो। तुम सब लोग पकड़ाई दोगे?

रंग०—एक आदमी भी नहीं, सिर्फ देवी रानी देंगी।

साहब—पीश्। अब और लड़ेगा कौन? ये जो कुछ आदमी हैं, ये क्या पाँच सौ सिपाहियों से लड़ सकेंगे? तुम्हारी बरकन्दाज़ सेना तो जंगल के भीतर पैठी, देख रहा हूँ।

रंगराज ने देखा, वास्तव में भवानी महाराज की सेना जंगल के भीतर घुसी।

रंगराज ने कहा—मैं इतना नहीं जानता। मुझसे मेरी मालिक ने जो कुछ कहा है, कह रहा हूँ। बजरा नहीं दिया जायगा, बजरे में जो धन है, वह नहीं मिलेगा; हममें से किसी को नहीं पाइएगा। सिर्फ़ देवी रानी को पाइएगा।

सा०—क्यों ?

रंग०—यह मैं नहीं जानता।

सा०—जानो या न जानो, बजरा अब मेरा है; मैं उस पर दख़ल करूँगा।

रंग०—बजरे पर चढ़ना मत, उसे छूना नहीं, नहीं तो विपत्ति हो सकती है।

सा०—पूः। पाँच सौ सिपाही हैं और तुम्हारे दो-चार आदमियों में विपत्ति होगी ?

यह कहकर साहब ने सफ़ेद झण्डा फेंक दिया। सिपाहियों को हुक्म दिया, बजरा घेर लो।

सिपाहियों ने बजरा घेर लिया। तब साहब ने कहा—बजरे पर चढ़कर बरकन्दाज़ों के हथियार छीन लो।

ऊँचे स्वर से साहब ने यह हुक्म दिया। देवी ने भी बजरे के भीतर से ऊँचे स्वर से हुक्म दिया—बजरे में जिसके जिसके हाथ में हथियार हैं, सब पानी में डाल दो।

सुनते ही, बजरे में जिसके जिसके हाथ हथियार थे, सब पानी में डाल दिये। रंगराज ने भी अपने अस्त्र पानी में फेंक दिये। देखकर साहब ख़ुश हुए। कहा—चलो, अब बजरे पर चलकर देखें, क्या है?

रंग०—आप ज़बरदस्ती बजरे पर जा रहे हैं, मेरा क़ुसूर नहीं।

"तुम्हारा क्या क़ुसूर है?" यह कहकर साहब सिर्फ़ एक सिपाही साथ लेकर बजरे पर चढ़े। यह बड़ी हिम्मत का काम नहीं। क्योंकि, बजरे में जो कुछ आदमी थे, उन लोगों ने हथियार डाल दिये थे। साहब नहीं समझे कि देवी की स्थिर बुद्धि ही तेज़ हथियार है। उसके लिए दूसरा हथियार ज़रूरी नहीं।

साहब रंगराज के साथ कमरे के दरवाज़े पर आये। दरवाज़ा उसी वक्त खुल गया। दोनों भीतर गये। भीतर जाकर जो कुछ देखा, उससे दोनों चकित हुए।

देखा, जिस दिन पहले-पहल व्रजेश्वर क़ैद होकर इस कमरे में आये थे, उस रोज़ इसकी जैसी मनोहर सजावट थी, आज भी वैसी ही है। दीवार पर वैसे ही चारु चित्र हैं। वैसा ही सुन्दर ग़लीचा बिछा हुआ है। वैसे ही इत्रदान, गुलाबपाश, वैसे ही सोने के पुष्पपात्र में फूल सजे हुए, सोने की फ़र्शी पर वैसा ही कस्तूरी-मिला ख़ुशबू उड़ाता हुआ तम्बाकू चढ़ा हुआ, वैसी ही चाँदी की मूर्तियाँ, चाँदी के झाड़, सोने की ज़ञ्जीर से लटकते सोने के दिये। परन्तु आज एक मसनद नहीं, दो हैं। दो मसनदों

पर ज़रीन गाव-तकियों का सहारा लिये दो सुन्दरियाँ बैठी हैं। बेशक़ीमत साड़ी पहने हुए, सभी अंगों में महामूल्य रत्नों के आभरण। साहब उन्हें नहीं पहचानते। रंगराज ने पहचाना कि एक निशि है, दूसरी दिवा।

साहब के लिए एक चाँदी की चौकी रक्खी गई थी, साहब उस पर बैठे। रंगराज खोजने लगे, देवी कहाँ हैं? देखा, कमरे की एक बग़ल में देवी के सहज वेश में देवी खड़ी हुई हैं, गाढ़ा पहने हुए, हाथों में सिर्फ़ कड़े डाले हुए, खुले बाल, कोई सजावट नहीं।

साहब ने पूछा—कौन देवी चौधरानी है? किसके साथ बातें करूँ?

निशि ने कहा—मेरे साथ बातें कीजिएगा, मैं देवी हूँ।

दिवा हँसी, कहा—अँगरेज़ देखकर मज़ाक़ कर रही है? यह मज़ाक़ का वक्त है? लेफ़्टीनेन्ट साहब! मेरी यह बहन ज़रा मज़ाक़-पसन्द है, परन्तु यह ऐसा वक़्त नहीं। आप मुझसे बातचीत कीजिए, मैं देवी चौधरानी हूँ।

निशि ने कहा—"मर तू; मेरे लिए तू फाँसी पर झूलना चाहती है क्या?" साहब की तरफ़ मुड़कर निशि ने कहा—साहब, वह मेरी बहन है। जान पड़ता है, स्नेह के वश होकर मुझे बचाने के लिए आपको धोखा दे रही है; मगर मैं किस तरह धोखा देकर बहन की जान लेकर अपनी जान बचाऊँ? प्राण बहुत ही तुच्छ हैं, हम बंगाली लड़कियाँ बिना हिचक के प्राण दे सकती हैं। चलिए, मुझे कहाँ ले जाइएगा, मैं चलती हूँ। मैं ही देवी रानी हूँ।

दिवा ने कहा—साहब, तुम्हें ईसा मसीह की क़सम है, अगर तुम बेगुनाह को पकड़ ले गये। देवी मैं हूँ।

रंगराज कुछ नहीं समझा। सिर्फ़ अनुभव से मालूम किया, भीतर कोई चालबाज़ी है। इसलिए अक़्ल लड़ाकर निशि की तरफ़ उँगली उठाकर हाथ जोड़कर कहा—हुज़ूर, यह सही-सही देवी रानी है।

तब देवी पहले-पहल बोली। कहा—इस मामले में मेरा बोलना बड़ा दोष है। परन्तु क्या जानूँ, झूठ बात साबित होने पर सबके प्राण न जायँ, इसलिए कहती हूँ, इस आदमी ने जो कुछ कहा है, वह सच नहीं। बाद को निशि की ओर उँगली उठाकर कहा—यह देवी नहीं। जो आदमी इसे देवी बता रहा है, वह रानीजी को माँ कहता है, इसलिए, रानीजी को बचाने के लिए वह दूसरी स्त्री की ओर इंगित कर रहा है।

तब साहब ने देवी से पूछा—देवी फिर कौन है?

देवी ने कहा— मैं देवी हूँ।

देवी के यह कहने पर निशि में, दिवा में, रंगराज में और देवी में बड़ा गुल मचा। निशि कहने लगी, "मैं देवी हूँ।" दिवा कहने लगी, "मैं हूँ।" रंगराज ने कहा, "यह है।" देवी ने कहा, "मैं हूँ।" बड़ा गुल मचा, बड़ा गड़बड़ घोटाला हुआ।

तब लेफ़्टीनेन्ट साहब ने मन में सोचा, इस हेर-फेर का निश्चय होना चाहिए। कहा, तुम दो स्त्रियों में एक देवी रानी अवश्य है; वह नौकरानी है, वह देवी नहीं। इन दो औरतों में वह

पापिनी कौन है, यह चालाकी से तुम लोग मुझे नहीं बतला रहो हो, परन्तु इससे तुम्हारा अभिप्राय सिद्ध नहीं होगा। मैं इस समय तुम दोनों को पकड़ ले जाऊँगा। इसके बाद जो देवी रानी साबित होगी, उसे ही फाँसी होगी। अगर सुबूत से यह बात साफ़ नहीं हुई तो तुम दोनों को फाँसी पर चढ़ना होगा।

तब निशि और दिवा दोनों ने कहा—इतने गुल गपाड़े से क्या काम? आपके साथ क्या गोइन्दा नहीं? अगर गोइन्दा हो तो उसे बुलाने से ही तो वह कह दे सकेगा कि कौन सही-सही देवी चौधरानी है।

हरवल्लभ को बजरे पर ले आयेगी, देवी का प्रधान उद्देश्य यह है। हरवल्लभ की रक्षा की व्यवस्था किये बिना देवी आत्मरक्षा का उपाय नहीं करेगी, यह निश्चित है। उन्हें बजरे पर न ले आ सकने पर उनकी रक्षा का निश्चय नहीं होता।

साहब ने सोचा, यह राय बुरी नहीं। तब उनके साथ जो सिपाही आया था उससे कहा, "गोइन्दा को बुलाओ।" सिपाही ने किश्ती के एक जमादार साहब को पुकारकर कहा, गोइन्दा को बुलाओ। तब गोइन्दा को बुलाने की आवाज़ पर आवाज़ उठने लगी। गोइन्दा कहाँ है, गोइन्दा कौन है, यह कोई नहीं जानता, सिर्फ़ चारों ओर पुकार उठने लगी।

सातवाँ परिच्छेद

वास्तव में हरवल्लभ राय महाशय लड़ाई के मैदान में ही थे, परन्तु वह अपनी इच्छा से नहीं, घटनाधीन होकर। पहले बहुत नज़दीक नहीं आये, "शृंगीणां शस्त्रपाणिनाम्" आदि चाणक्य के दिये सदुपदेश याद करके वे सिपाहियों की किश्ती पर नहीं चढ़े। एक जुदा डोंगी पर रहकर लेफ़्टीनेन्ट साहब को बजरा दिखाकर आधे कोस दूर भगकर अपनी डोंगी और जान बचाये हुए थे। इसके बाद देखा, आकाश में घटा छाई हुई है। सोचा, आँधी आयेगी और अभी मेरी डोंगी डूब जायगी, रुपये के लोभ में आकर मैं जान गँवाऊँगा। मेरी अन्तिम क्रिया भी नहीं होगी। तब राय महाशय डोंगी से किनारे उतरे। परन्तु किनारे वहाँ कहीं कोई नहीं देखकर बहुत डरे। साँप का डर, बाघ का डर, चोर-डाकुओं का डर, भूत का भी डर। हरवल्लभ के मन में आया, क्यों इस तरह झख मारने आया था? हरवल्लभ को रुलाई आने लगी।

ऐसे वक्त एकाएक बन्दूकों की आवाज़, सिपाही-बरकन्दाज़ों का हो-हल्ला सब बन्द हो गया। हरवल्लभ को मालूम दिया, अवश्य सिपाहियों की विजय हुई है, डाकू औरत पकड़ ली गई, नहीं तो लड़ाई क्यों बन्द होगी? तब हरवल्लभ को भरोसा हुआ, लड़ाई की जगह पर पहुँचने के लिए बढ़े। लेकिन इस रात के समय,

इस अँधेरे में, इस जंगल के बीच में बढ़ें किस तरह ? डोंगी के माझी से पूछा—अरे क्यों भाई माझी, भला उस तरफ़ जाया जाय किस तरह, कह सकते हो ?

माझी ने कहा—जाने की और चिन्ता क्या है, डोंगी पर चढ़िए, लिये चलता हूँ। सिपाही तो नहीं धर-पकड़ करेंगे ? लड़ाई अगर फिर छिड़े ?

हर—सिपाही हमसे कुछ नहीं कहेंगे। लड़ाई अब नहीं छिड़ेगी। डाकू पकड़े गये हैं। परन्तु, बादल ऐसे चढ़े हैं, अभी आँधी आयेगी, डोंगी पर चढ़ूँ किस तरह ?

माझी ने कहा,—आँधी में डोंगी नहीं डूबती।

पहले हरवल्लभ ने ऐसी बातों पर विश्वास नहीं किया, अन्त में मजबूरन डोंगी पर चढ़े। माँझी को उपदेश दिया, "किनारे-किनारे डोंगी ले चलो।" माँझी ने वैसा ही किया। जल्द डोंगी बजरे से आकर लगी। हरवल्लभ सिपाहियों का संकेत-वाक्य जानते थे। फलतः सिपाहियों ने आपत्ति नहीं की।

इसी समय 'गोइन्दा, गोइन्दा' की पुकार मची हुई थी। हरवल्लभ ने बजरे पर चढ़कर सामने के अरदली से पूछा—गोइन्दा को खोज रहे हो ? मैं गोइन्दा हूँ।

सिपाही ने कहा—तुम्हें कप्तान साहब ने याद किया है।

हर—वे कहा हैं ?

सिपाही—कमरे के भीतर, तुम कमरे में जाओ।

'हरवल्लभ आ रहे हैं' समझकर देवी चलने को हुई। "कप्तान साहब के लिए कुछ जलपान की व्यवस्था करूँ" कहकर वह दूसरे कमरे में चली गई।

यहाँ हरवल्लभ कमरे की तरफ़ चले। कमरे के द्वार पर पहुँचकर कमरे की सज्जा और ऐश्वर्य्य, दिवा और निशि का रूप और सजावट देखकर वे चकित हुए। साहब को सलाम करने चले, भूलकर निशि को सलाम कर बैठे। हँसकर निशि ने कहा—बन्दगी, ख़ाँ साहब, मिज़ाज शरीफ़ ?

सुनकर दिवा बोली—बन्दगी, ख़ाँ साहब, मुझे एक कुर्निश न हुई, मैं इनकी रानी हूँ।

साहब ने हरवल्लभ से कहा—'फ़रेब करके ये दोनों कह रही हैं, 'मैं देवी चौधरानी हूँ।' कौन देवी चौधरानी है, इसकी शिनाख़्त न हो सकने की वजह मैंने तुम्हें बुलाया है। कौन देवी है ?

हरवल्लभ बड़े चक्कर में पड़े। ऊपर के चौदह पुश्त तक कभी देवी को नहीं देखा। क्या करें, सोच-विचार कर निशि को दिखा दिया। निशि खिलखिलाकर हँस उठी। हरवल्लभ का रंग उड़ गया। 'ग़लती हुई' कहकर उन्होंने दिवा की तरफ़ उँगली उठाई। दिवा लहर उठाकर हँसी। हरवल्लभ का चेहरा उतर गया। उन्होंने फिर निशि को दिखाया। साहब तब गर्म होकर हरवल्लभ से बोले—टुम बडजाट सुअर, टुम पहचान्टे नहीं।

तब दिवा ने कहा—साहब, नाराज़ नहीं हूजिएगा। ये नहीं पहचानते, इनके लड़के पहचानते हैं। इनके लड़के बजरे की छत पर बैठे हैं। उन्हें बुलाइए, वे पहचानेंगे।

हरवल्लभ आसमान से गिरे। कहा—मेरा लड़का!

दिवा—ऐसा ही सुनती हूँ।

हर—व्रजेश्वर?

दिवा—वही।

हर—कहाँ?

दिवा—छत पर।

हर—व्रज यहाँ क्यों है?

दिवा—वे बतलायँगे।

साहब ने हुक्म दिया—उसे ले आओ।

दिवा ने रंगराज को इशारा किया। तब रंगराज ने छत पर जाकर व्रजेश्वर से कहा—चलो, दिवा देवी की आज्ञा है।

व्रजेश्वर उतरकर कमरे के भीतर आये। देवी की आज्ञा पहले ही हो चुकी थी कि दिवा का हुक्म होने पर व्रजेश्वर छत से उतरेंगे। देवी की ऐसी ही व्यवस्था है।

साहब ने व्रजेश्वर से पूछा—तुम देवी चौधरानी को पहचानते हो?

व्रज—पहचानता हूँ।

साहब—यहाँ देवी है?

व्रज—नहीं।

साहब तब मारे ग़ुस्से के अंधे होकर बोले—यह क्या ? इन दोनों में कोई भी देवी चौधरानी नहीं ?

व्रज—ये उसकी दासियाँ हैं।

सा०—ऍं ! तुम देवी को पहचानते हो ?

व्रज—बहुत अच्छी तरह।

सा०—अगर इनमें कोई देवी नहीं, तो देवी इस बजरे में ज़रूर कहीं छिपी हुई है। जान पड़ता है, देवी वही नौकरानी है। हम बजरे की तलाशी ले रहे हैं, तुम शिनाख़्त करोगे, आओ।

व्रज—साहब, तुम्हें बजरे की तलाशी लेनी हो, लो; मैं शिनाख़्त क्यों करूँगा ?

चकित होकर साहब ने गरजकर कहा—क्यों, बड्जाट, टुम गोइन्दा नहीं ?

"नहीं" कहकर व्रजेश्वर ने साहब के गाल पर बयासी सिक्के का एक तमाचा रक्खा।

"क्या किया, क्या किया, सर्वनाश किया", कहते हुए हरवल्लभ रो उठे।

"हुजूर, तूफ़ान उठा" कहकर बाहर से जमादार ने आवाज़ दी।

"साँय, साँय" करती हुई, आकाश प्रान्त से प्रबल वेग से आँधी गरजती आती हुई सुन पड़ी।

कमरे के भीतर से ठीक उसी समय—जिस समय साहब के गाल पर तमाचा पड़ा—फिर शंख बजा। इस बार दो फूँकें पड़ीं।

बजरे का लंगर डाला नहीं था, पहले कह चुके हैं; रस्सी खूँटे से बँधी थी, खूँटे के पास दो मल्लाह बैठे थे। ज्योंही शङ्ख बजा, त्योंही रस्सी छोड़कर वे कूदकर बजरे पर आये। किनारे जो सिपाही बजरा घेरे हुए थे, उन्होंने उन्हें मारने के लिए संगीनें उठाईं, परन्तु उनके हाथों की बन्दूकें हाथों में ही रह गईं, पलक मारते एक बड़ी घटना हो गई। देवी की चाल से एक पल में कम्पनी के वे पाँच सौ सिपाही परास्त हुए।

पहले ही कहा है कि शुरू से ही बजरे के चारों पाल चढ़े हुए थे। कहा है कि निशि और दिवा बीच में आकर मल्लाहों को कोई उपदेश दे गई थीं। उस उपदेश के अनुसार ही खूँटे के पास आदमी बैठे थे। और उसी उपदेश के अनुसार पालों की रस्सियों को लेकर चार मल्लाह बैठे हुए थे। शंख की आवाज़ सुनते ही उन लोगों ने पाल की रस्सियाँ खींचकर पकड़ीं। माझी ने पतवार सँभाली। अकस्मात् वह प्रचण्ड वेगवाली आँधी आकर चारों पालों में लगी। बजरा घूमा। जिन दो सिपाहियों ने संगीनें उठाई थीं, उनकी संगीनें उठी ही रह गईं; बजरे का सिरा पचास हाथ दूर गया। बजरा घूमा। इसके बाद आँधी के वेग से भरे पाल का बजरा एक बग़ल झुका, जैसे डूबता हो। लिखते इतना समय लग गया, लेकिन इतना घटित हुआ एक क्षण में। साहब ने ब्रजेश्वर के तमाचे के जवाब में घूँसा उठाया ही था कि इतने में यह सब हो गया, उनका भी हाथ का घूँसा हाथ में रह गया। ज्योंही बजरा घूमा, साहब के पैर उखड़ गये और वे मुट्ठी बाँधे हुए दिवा सुन्दरी

के पैरों के पास गिर पड़े। व्रजेश्वर साहब के कन्धे पर आये और व्रजेश्वर पर रंगराज। हरवल्लभ पहले निशि देवी के कन्धे पर टूटे थे, बाद को वहाँ से लुढ़कते-लुढ़कते रंगराज के चमरौधे जूतों से अटककर रह गये। उन्होंने सोचा था, नाव डूब गई है, हम सब लोग मर गये हैं, अब ईश्वर का नाम लेकर क्या होगा?

लेकिन नाव डूबी नहीं; एक बग़ल होकर फिर सीधी हो गई और हवा के अनुकूल बिजली की गति से चली। जो लोग गिर गये थे, वे फिर उठकर खड़े हो गये। साहब ने फिर घूँसा उठाया। परन्तु साहब की फ़ौज के जो आदमी पानी में खड़े थे, बजरा उनके ऊपर से निकल गया पानी में डुबकी मारकर बहुतों ने जान बचाई। बजरा घूम रहा है दूर से देखकर भागकर बहुतों ने जान बचाई। कोई घायल हुआ, लेकिन कोई मरा नहीं। किश्तियाँ बजरे के नीचे आकर डूब गईं। पानी वहाँ बहुत ज्यादा नहीं, बहाव तेज़ नहीं, इसलिए सभी बच गये। परन्तु बजरा फिर किसी की नज़र में नहीं पड़ा। तारा टूटने की गति से बजरा न जाने कहाँ आँधी के साथ अदृश्य हो गया, किसी की नज़र में नहीं आया। सिपाहियों की सेना छिन्न-भिन्न हो गई। देवी उन लोगों को परास्त कर पाल उड़ाती हुई चल निकली, लेफ़्टीनेन्ट साहब और हरवल्लभ देवी के पास क़ैद हो गये। पलक मारते लड़ाई फ़तह हुई। देवी ने इसी लिए आकाश देखकर कहा था, "मेरी रक्षा का उपाय भगवान् कर रहे हैं।"

आठवाँ परिच्छेद

जलराशि को तोड़ता हुआ, हिलता-झूमता बजरा नक्षत्र की गति से बढ़ा। शब्द बड़ा भयंकर हो रहा था। बजरे के सामने पड़नेवाली तरंगों की गरज भयंकर थी, आँधी का शब्द भयंकर था। परन्तु नाव की गढ़न अनुपम थी, नाविकों की दक्षता और शिक्षा प्रसिद्ध। बजरा इस आँधी में चार पालों के बल पर बिना बाधा के चला। चढ़े हुए आदमी जो पहले कद्दू की तरह ढनग रहे थे, अब सही अवस्था में आये। हरवल्लभ राय अँगूठे में जनेऊ लपेटकर ईश्वर का नाम जपने लगे कि कहीं फिर न डूबें। लेफ्टीनेन्ट साहब ने उस मुलतबी किये घूँसे को फिर बाँधने की कोशिश में हाथ उठाया कि व्रजेश्वर ने उनका हाथ पकड़ लिया। हरवल्लभ ने लड़के को धिक्कारा। कहा—यह क्या करते हो, अँगरेज़ पर हाथ उठाते हो?

व्रजेश्वर ने कहा—मैं अँगरेज़ पर हाथ उठा रहा हूँ या अँगरेज़ मुझ पर हाथ उठा रहा है?

हरवल्लभ ने साहब से कहा—हुजूर, यह लड़का है, आज भी अक़्ल नहीं हुई, आप इसका क़ुसूर नहीं लीजिएगा। माफ़ कीजिएगा।

साहब ने कहा—यह बड़ा बदमाश है। लेकिन यह अगर हाथ जोड़कर मुझसे माफ़ी चाहे तो मैं इसे माफ़ कर सकता हूँ।

हर—व्रज, ऐसा ही करो। हाथ जोड़कर साहब से कहो, मुझे माफ़ कीजिए।

व्रजेश्वर—साहब, हम लोग हिन्दू हैं, पिता की आज्ञा हम लोग कभी नहीं टालते। मैं हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करता हूँ, आप मुझे माफ़ कीजिए।

व्रजेश्वर को पिता के प्रति भक्ति देखकर साहब ने प्रसन्न होकर माफ़ किया, और व्रजेश्वर का हाथ लेकर अच्छी तरह हिला दिया। चौदह पुरुषों के भीतर व्रजेश्वर को नहीं मालूम, शेकहैंड किसे कहते हैं, लिहाज़ा वह कुछ बेवकूफ़ सा बन गया। मन में सोचा, "नहीं मालूम अगर फिर छिड़े।" यह सोचकर व्रजेश्वर बाहर जाकर बैठा। सिर्फ़ आँधी थी, पानी वैसा नहीं बरस रहा था। भीगना नहीं पड़ा।

रंगराज भी बाहर आकर कमरे का द्वार बन्द कर दरवाजे में पीठ लगाकर बैठा, दोनों तरफ़ के पहरे में। ख़ास तौर से इस समय बाहर सतर्क रहना अच्छा है, बजरा बड़ी तेज़ी से जा रहा है, एकाएक विपत्ति का आना भी तअज्जुब की बात नहीं।

दिवा उठकर देवी के पास गई। पुरुषों के बीच अब कोई ख़ास ज़रूरत नहीं रह गई। निशि नहीं उठी, उसका कोई उद्देश था। उसका सर्वस्व श्रीकृष्ण को अर्पित है, इसलिए उसमें अपार साहस है।

साहब जमकर फिर चाँदी की चौकी पर बैठे; सोचने लगे, डाकुओं के हाथ से किस तरह मुक्त हूँगा ? जिसे पकड़ने आया था, उसी के पास पकड़ा गया—स्त्री के पास पराजित हुआ, अँगरेज़ों में अब किस तरह मुँह दिखाऊँगा ? मेरा लौटकर न जाना ही अच्छा है।

हरवल्लभ बैठने की जगह न पाकर निशि सुन्दरी की मसनद के पास बैठे। देखकर निशि ने पूछा—आप कुछ सोना चाहते हैं ?

हर—आज अब नींद लगेगी भी ?

निशि—आज नहीं लगी तब तो फिर कभी नहीं लगेगी।

हर—यानी ?

निशि—फिर सोने का दिन कब आयेगा ?

हर—क्यों ?

निशि—आप देवी चौधरानी को पकड़ा देने के लिए आये थे।

हर—वह—वह—ऐसा है कि—

निशि—पकड़ी जाने पर देवी का क्या होता जानते हो ?

हर—अ—ऐसा—क्या—

निशि—ऐसा कुछ नहीं, फाँसी।

हर—वह—नहीं—यह—समझ लो कि—

निशि—देवी ने तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं किया, बल्कि बड़ा उपकार किया है। जब तुम्हारी जाति जा रही थी, प्राण जा रहे थे, तब तुम्हें पचास हज़ार रुपये नक़द देकर तुम्हारी रक्षा की थी।

इसके बदले में तुम उसे फाँसी दिलाने की कोशिश में थे। तुम्हारे योग्य कौन सा दण्ड है, कहो ज़रा ?

हरवल्लभ में बात करने की शक्ति नहीं।

निशि कहती गई,—डंकिनी का श्मशान एक है—बहुत बड़ा श्मशान। हम जिन्हें जान से मारते हैं उन्हें वहीं ले जाकर मारते हैं। बजरा इस समय वहीं जा रहा है। वहाँ पहुँचने पर साहब को फाँसी दी जायगी, रानीजी का हुक्म हो चुका है। और तुम्हारे लिए क्या हुक्म हुआ है, जानते हो ?

हरवल्लभ रोने लगे। हाथ जोड़कर कहा—मेरी रक्षा करो।

निशि ने कहा—तुम्हारी रक्षा करे, ऐसा नीच पामर कौन है ? तुम्हें सूली पर चढ़ाने का हुक्म हुआ है।

हरवल्लभ फूट-फूटकर रोने लगे। आँधी की बड़ी तेज़ सनसनाहट थी। उस रोने की ध्वनि व्रजेश्वर ने नहीं सुनी—देवी ने भी नहीं। साहब ने सुनी। बातें साहब ने नहीं सुनीं, रोना सुना। साहब ने घुड़की दी—रोओ मत उल्लू, मरना एक दिन ज़रूर है।

इस बात की तरफ़ कान न देकर निशि के सामने हाथ जोड़कर वृद्ध ब्राह्मण रोने लगे। कहा—क्यों जी, मुझे क्या कोई बचा नहीं सकता ?

निशि—तुम्हारी तरह के नराधम को बचाकर कौन पातकग्रस्त होगा ? हमारी रानी दयामयी हैं, परन्तु तुम्हारे लिए उनके पास हम कोई दया की भीख नहीं माँगेंगे।

हर—मैं एक लाख रुपया दूंगा।

निशि—यह बात मुँह में लाते लाज नहीं आती? पचास हज़ार रुपये के लिए यह कृतघ्न का काम किया है, इस पर लाख रुपये की डींग मारते हो?

हर—मुझसे जो भी कहोगी, वह करूँगा।

निशि—तुम्हारे जैसे आदमी से कौन सा काम होता है कि तुम जैसा कहोगे वैसा करोगे?

हर—बहुत छोटा भी उपकार कर सकता है। अजी क्या करना होगा, कहो। मैं जी-जान से पूरा करूँगा, मुझे बचाओ।

निशि—(सोचती हुई) तुम्हारे द्वारा भी मेरा एक उपकार हो तो हो सकता है, लेकिन तुम्हारे जैसे आदमी से वह उपकार न होना ही अच्छा है।

हर—तुम्हारे सामने हाथ जोड़ता हूँ—तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ—

हरवल्लभ विह्वल थे, निशि देवी की बहुँटियाँ-पहनी भरी बांह पकड़ ही ली थी। चतुर निशि ने पहले से हाथ हटा लिया था। कहा—ख़बरदार, ये हाथ श्रीकृष्ण के पकड़े हुए हैं, परन्तु तुम्हें हाथ-पैर पकड़ना नहीं होगा, तुम अगर इतने विकल हो गये हो तो तुम्हारी जिस तरह रक्षा हो, वह मैं करने के लिए तैयार हूँ। परन्तु तुमसे मैं जो कुछ कहूँगी, वह तुम करोगे, इसका मुझे विश्वास नहीं होता। तुम धोखेबाज़, कृतघ्न, पामर हो, गोइन्दागरी करते हो। तुम्हारी बात का विश्वास क्या है?

हर—जो क़सम कहो, वह क़सम खाने को तैयार हूँ।

निशि—तुम्हारी भी कोई क़सम है? क्या क़सम खाओगे?

हर—गंगाजल, ताँबा और तुलसी दो, मैं लेकर क़सम खाता हूँ।

निशि—ब्रजेश्वर के सर पर हाथ रखकर क़सम खा सकते हो?

हरवल्लभ गरज उठे। कहा—तुम्हारी जो इच्छा हो, करो; मैं वैसी क़सम नहीं खाऊँगा।

परन्तु क्षण भर के लिए यह तेज था। हरवल्लभ तब फिर हाथ मलने लगे। कहा—और जो भी क़सम कहो, वह खाऊँगा, बचाओ।

निशि—अच्छा, क़सम नहीं खानी होगी। तुम हमारी मुट्ठी में हो। सुनो, मैं बड़े कुलीन की लड़की हूँ। हमारे यहाँ वर मिलना मुश्किल होता है। मेरे लिए एक वर मिला था (पाठक जानते हैं, सब झूठ है) परन्तु मेरी छोटी बहन के लिए नहीं मिला। अभी तक उसकी शादी नहीं हुई।

हर—उम्र कितनी हुई है?

निशि—पच्चीस-तीस साल।

हर—कुलीन की लड़कियाँ ऐसी बहुत रह जाती हैं।

निशि—रहती हैं, परन्तु उसकी शादी न होने पर अब नीचे घर में जायगी, यह हालत है। तुम मेरे पिता के ओत-प्रोतवाले हो। तुम अगर मेरी बहन से ब्याह करो तो मेरे बाप का कुल बच जाय। मैं भी यह बात कहकर रानीजी से तुम्हारे प्राणों की भिक्षा माँग लूँ।

हरवल्लभ के सर से जैसे पहाड़ उतर गया। एक और विवाह ही तो है। यह कुलीन के लिए कोई मुश्किल काम नहीं। वह कितनी

भी बड़ी लड़की क्यों न हो। निशि ने जिस उत्तर की प्रत्याशा की थी, हरवल्लभ ने ठीक वही उत्तर दिया। कहा—यह बहुत बड़ी बात क्या है? कुलीन के कुल की रक्षा करना कुलीन का ही काम है। लेकिन एक बात है, वह यह कि मैं बुड्ढा हुआ हूँ, मेरी अब विवाहवाली उम्र नहीं रही। मेरा लड़का विवाह करे तो क्या नहीं बनता?

निशि—क्या वे राज़ी होंगे?

हर—मेरे कहने से ही होगा।

निशि—तो आप कल सुबह वही आज्ञा दे जाइएगा। मैं पालकी-कहार बुलाकर आप को घर भेजवा दूँगी। आप पहले जाकर बहू-भात का उद्योग कीजिएगा। हम लोग वर का ब्याह कर बहू साथ भेज देंगे।

हरवल्लभ ने हाथ बढ़ाकर स्वर्ग पाया। कहाँ सूली पर चढ़ रहे थे, कहाँ बहू-भात की धूम! हरवल्लभ को एक क्षण पहाड़ होने लगा। कहा—तो तुम ये सब बातें रानीजी से जाकर कहो।

"मैं जाती हूँ।" कहकर निशि दूसरे कमरे के भीतर गई।

निशि के जाने पर साहब ने हरवल्लभ से पूछा—यह औरत तुमसे क्या कह रही थी?

हर—ऐसा कुछ नहीं।

साहब—रो क्यों रहे थे?

हर—कहाँ, रोया तो नहीं।

साहब—बंगाली ऐसा ही झूठा है, सही है।

निशि के भीतर आने पर देवी ने पूछा—मेरे ससुर के साथ इतनी क्या बातें कर रही थीं ?

निशि—देखा, अगर तुम्हारी सासु की पदवी प्राप्त कर सकूँ।

देवी—निशि देवी ! तुम्हारा मन, प्राण, जीवन-यौवन सब कुछ श्रीकृष्ण को अर्पित है, लेकिन यह चालबाज़ी नहीं। इतना अपने इस्तेमाल के लिए रख छोड़ा है ?

निशि—देवता को अच्छी ही चीज़ दी जाती है। बुरी चीज़ थोड़े ही दी जाती है ?

देवी—तुम नरक में सड़कर मरोगी।

नवाँ परिच्छेद

आँधी रुकी, नाव भी रुकी। देवी ने बजरे के झरोखे से देखा, प्रभात हो रहा है। कहा—निशि! आज सुप्रभात है।

निशि ने कहा—आज सुप्रभात है।

दिवा—तुम अवसित हुई, मैं सुप्रभात हूँ।

निशि—जिस दिन मेरा अवसान होगा उसी दिन मैं सुप्रभात कहूँगी। इस अँधेरे का अवसान नहीं। आज समझी, देवी चौधरानी का सुप्रभात है; क्योंकि आज देवी चौधरानी का अवसान है।

दिवा—यह कैसी बात है री मुँहझौंसी?

निशि—बात अच्छी है। देवी मर गई, प्रफुल्ल ससुराल चली।

देवी—इसकी अभी बहुत देर है। जो कुछ कहती हूँ, करो तो। बजरा बाँधने को तो कह दो।

निशि ने हुक्म जारी किया—माझियों ने किनारे लगाकर बजरा बाँधा। इसके बाद देवी ने कहा—रंगराज से पूछो, हम लोग कहाँ आये हैं? रंगपुर कितनी दूर है और भूतनाथ कितनी दूर?

पूछने पर रंगराज ने कहा—एक रात में चार रोज का रास्ता आये हैं। रंगपुर यहाँ से बहुत दिनों का रास्ता है, स्थल-पथ से भूतनाथ एक दिन में जाया जा सकता है।

"पालकी और कहार मिलेंगे?"

"कोशिश करूँगा तो सब कुछ मिल सकेगा।"

देवी ने निशि से कहा—तो मेरे ससुर को नहाकर पूजा करने के लिए कह दो।

दिवा—इतनी जल्दी क्यों ?

"ससुर के लड़के सारी रात बाहर बैठे हैं, याद नहीं। बेचारे समुद्र पार कर लंका नहीं आ पा रहे, देखती नहीं हो ?" यह कहकर निशि ने रंगराज को बुलाकर हरवल्लभ के सामने कहा—साहब को फाँसी पर चढ़ाना होगा। ब्राह्मण को अभी सूली पर चढ़ाने की जरूरत नहीं। उसे पहरेदार लगाकर स्नान-पूजन के लिए भेज दो।

हरवल्लभ ने पूछा—मेरे लिए कोई हुक्म हुआ ?

निशि ने आँखें दबाते हुए कहा—मेरी प्रार्थना मञ्जूर हो गई है। तुम नहाकर पूजा कर आओ।

निशि ने रंगराज से कानोंकान कहा, "पहरेदार यानी पानी भर देनेवाला कहार-नौकर।" रंगराज ने वैसा ही बन्दोबस्त करके हरवल्लभ को स्नान-पूजन के लिए उतार दिया।

तब देवी ने निशि से कहा—साहब को छोड़ देने के लिए कहो। साहब रंगपुर चला जाय। रंगपुर बहुत दूर है। सौ मोहरें उसे राह-खर्च दो। नहीं तो इतना रास्ता जायगा किस तरह ?

निशि ने सौ मोहरें ले जाकर रंगराज को दीं। कानोंकान उपदेश दिया। उपदेश में देवी ने जो कुछ कहा था, उसके अलावा और भी कुछ कहा।

रंगराज ने तब दो बरकन्दाज़ों को ले आकर साहब को पकड़कर कहा—उठो।

साहब—कहाँ जाना होगा ?

रंग—तुम कैदी हो, पूछनेवाले कौन हो ?

साहब दूसरी बात न कहकर रंगराज के पीछे-पीछे दो बरकन्दाज़ों के बीच में चले। जिस घाट में हरवल्लभ नहा रहे थे, उसी घाट से वे लोग गये।

हरवल्लभ ने पूछा—साहब को कहाँ लिये जा रहे हो ?

रंगराज ने कहा—इसी जंगल में।

हर—क्यों ?

रंग—जंगल के बीच में ले जाकर फाँसी पर चढ़ायेंगे।

हरवल्लभ का बदन काँपा। सन्ध्या-पूजन के सब मन्त्र वे भूल गये। अच्छी तरह सन्ध्या-पूजन नहीं हुआ।

साहब को जंगल में ले जाकर रंगराज ने कहा—हम लोग किसी को फाँसी नहीं देते। तुम बाला-बाला अपने यहाँ लौट जाओ। हमारे पीछे अब न लगना। तुम्हें हमने छोड़ दिया।

साहब को पहले विस्मय हुआ। इसके बाद सोचा, अँगरेज़ को फाँसी पर चढ़ाये, बंगाली की इतनी हिम्मत !

इसके बाद रंगराज ने कहा—साहब, रंगपुर यहाँ से बहुत दूर है, जाओगे किस तरह ?

साहब—जिस तरह होगा।

रंग—नाव किराये पर लो, या गाँव जाकर घोड़ा ख़रीदो, या पालकी किराये करो। तुम्हें हमारी रानी ने राह-ख़र्च के लिए सौ मोहरें दी हैं।

रंगराज मोहरें गिनकर देने लगा।

पाँच मोहरें लेकर साहब ने और नहीं लीं। कहा—इतने से काफ़ी होगा। मैंने यह क़र्ज़ लिया।

रंग—अच्छा, हम लोग अगर तुम्हारे पास लेने जायँ तो वसूल देना। और तुम्हारा सिपाही अगर कोई ज़ख़्मी हुआ हो तो उसे भेज देना। अगर कोई मर गया हो तो उसके वारिस को भेज देना।

साहब—क्यों ?

रंग—ऐसी हालत में रानी कुछ-कुछ दान किया करती हैं।

साहब ने विश्वास नहीं किया। अच्छा-बुरा कुछ न कहकर चला गया।

रंगराज तब पालकी और कहारों की खोज में गया। उसके लिए यह आज्ञा भी थी।

दसवाँ परिच्छेद

इधर रास्ता साफ़ देखकर व्रजेश्वर धीरे-धीरे देवी के पास आकर बैठे।

देवी ने कहा—अच्छा हुआ जो दर्शन दिये। तुम्हारी राय के बिना आज का काम नहीं बन रहा। तुमने प्राण रखने की आज्ञा दी थी, इसी लिए प्राण रक्खे हुए हूँ। देवी मर गई है, देवी चौधरानी अब नहीं रही। परन्तु प्रफुल्ल अभी है। प्रफुल्ल रहेगी या देवी के साथ जायगी ?

व्रजेश्वर ने आदर से प्रफुल्ल का का मुँह चूमा। कहा—तुम मेरे घर चलो, घर उजेला होगा। तुम नहीं जाओगी तो मैं नहीं जाऊँगा।

प्र०—मैं घर जाऊँगी तो मेरे ससुर क्या कहेंगे ?

व्रज—वह भार मेरा है। तुम इन्तज़ाम करके पहले उन्हें भेज दो। हम लोग पीछे जायँगे।

प्र०—पालकी और कहार बुलाने आदमी गया है।

कहार पालकी लेकर जल्द आ गये। हरवल्लभ ने भी संक्षेप में सन्ध्या-गायत्री समाप्त की और बजरे पर आये। देखा, निशि देवी खीर, छेना, मक्खन और अच्छे-पके आम, केले आदि फल उनके जलपान के लिए सजा रही हैं। बड़ी विनय करके निशि ने उन्हें

जलपान के लिए बैठाया। कहा—अब आप हमारे रिश्तदार हो गये, बिना जलपान किये आप नहीं जा पायँगे।

जलपान के लिए न बैठकर हरवल्लभ ने पूछा—व्रजेश्वर कहाँ है? कल रात को बाहर उठ गया, तब से उसे नहीं देखा।

निशि—वे मेरे बहनोई होंगे, उनके लिए चिन्ता नहीं कीजिएगा। वे यहीं हैं, आप जलपान करें। मैं उन्हें बुला देती हूँ। वह बात उनसे कह जाइए।

हरवल्लभ जलपान करने बैठे। निशि व्रजेश्वर को बुला लाई। कमरे के भीतर से व्रजेश्वर बाहर निकला। देखकर पिता-पुत्र दोनों अप्रतिभ हुए। हरवल्लभ ने सोचा, मेरे चाँद से बेटे को देखकर डंकिनी बेटियाँ मोह गई हैं, अच्छा है।

व्रजेश्वर से हरवल्लभ ने कहा—सुनो, बेटा, तुम यहाँ किस तरह आये, मैं तो यह अभी तक नहीं समझ सका। लेकिन ख़ैर, यह यहाँ की बात नहीं, यह बात फिर होगी। इस वक्त मैं एक अनुरोध में पड़ा हूँ। वह अनुरोध रखना होगा। ये देवीजी बड़े कुलीन की लड़की हैं, इनके पिता हमारे ओतप्रोतवाले हैं। इनकी एक बहन हैं, ब्याह नहीं हुआ। वर नहीं मिलता। अब कुल जा रहा है। सो, कुलीन का कुल बचाना कुलीन का ही काम है—मोटिये-मजदूर का काम नहीं। और तुम एक शादी और करो, यह भी हमारी इच्छा है। तुम्हारी माँ की भी यह इच्छा है। ख़ास तौर से बड़ी बहू के स्वर्गवास के बाद से हम लोग इस सम्बन्ध में कुछ दुखी हैं। इसी लिए कह रहे थे, जब अनुरोध में पड़े हैं, तब यह

कर्तव्य हो गया है। मैं आज्ञा दे रहा हूँ, तुम इनकी बहन से व्याह करो।

कुल मिलाकर व्रजेश्वर ने कहा—जो आज्ञा।

निशि को बड़ी हँसी आई, लेकिन हँसी नहीं।

हरवल्लभ कहने लगे—अच्छा तो मेरी पालकी आ गई है, मैं पहले जाकर बहू-भात की तैयारी करता हूँ, तुम यथाशास्त्र विवाह करके बहू लेकर घर जाना।

व्रज—जो आज्ञा।

हर—तुम्हें अधिक और क्या कहूँ? तुम लड़के नहीं हो; कुल, शील, जाति, मर्यादा सब खुद देख भालकर व्याह करना। (बाद को आवाज़ कुछ धीमी कर कहने लगे) और हम लोगों का उचित दहेज़ जो कुछ है, वह तो जानते ही हो।

व्रज—जी, हाँ।

हरवल्लभ जलपान समाप्त कर विदा हुए। व्रज और निशि ने उनकी पदधूलि ली। पालकी पर चढ़कर उन्होंने साँस ली, ईश्वर-स्मरण करने लगे, जैसे जान पाई। सोचा, लड़का डंकिनी बेटियों के हाथ में रहा, लेकिन डर की बात नहीं। लड़के ने अपना रास्ता पहचान लिया है। चाँदमुख की सब जगह विजय है।

हरवल्लभ चले गये। व्रजेश्वर ने निशि से पूछा, यह फिर कैसा छल है? तुम्हारी छोटी बहन कौन है?

निशि—पहचानते नहीं? उसका नाम प्रफुल्ल है।

व्रज—अच्छा, मैं समझा। किस तरह इस मामले में पिताजी को राज़ी किया ?

निशि—औरतों के बहुत तरहें हैं। छोटी बहन की सास नहीं बनना चाहिए, नहीं तो एक दूसरे सम्बन्ध में भी उन्हें राज़ी कर सकती थी।

दिवा ग़ुस्से में आ गई। कहा—तुम्हारी खाट जल्द गंगा जाय। लाज-शर्म क्या कुछ भी नहीं ? मर्द के साथ क्या इसी तरह बातचीत की जाती है ?

निशि—कौन मर्द है ? व्रजेश्वर ? कल देखा जा चुका है, कौन मर्द है—कौन औरत।

व्रज—आज भी देखोगी। तुम औरत हो, औरत की तरह मोटी बुद्धि का काम किया है। यह काम अच्छा नहीं हुआ।

निशि—वह कौन सा काम है ?

व्रज—बाप के साथ भी छल चलता है ? बाप की आँखों में धूल झोंककर झूठ बात क़ायम रखकर मैं स्त्री लेकर गृहस्थी करूँगा ? अगर बाप को धोखा दिया तो पृथ्वी में किसकी आँखों में धूल झोंकते अटकूँगा ?

निशि अप्रतिभ हुई। मन ही मन स्वीकार किया, व्रजेश्वर सही मानी में मर्द हैं। सिर्फ़ लठैती से मर्द नहीं कहलाता, यह निशि समझी। पूछा—अब उपाय ?

व्रज—उपाय है, चलो। प्रफुल्ल को लेकर घर चलें। वहाँ कुल बातें पिताजी से खोलकर कहूँगा। चोरीचोरा नहीं रहेगा।

निशि—तो क्या तुम्हारे पिता देवी चौधरानी को मकान पर चढ़ने देंगे ?

देवी ने कहा—देवी चौधरानी कौन है ? देवी चौधरानी मर गई है, उसका नाम इस पृथ्वी में मुख पर भी न लाना। प्रफुल्ल की बातें कहो।

निशि—प्रफुल्ल को भी क्या वे घर में जगह देंगे ?

ब्रज—मैंने तो कहा है कि वह भार मुझ पर है।

प्रफुल्ल सन्तुष्ट हुई। समझ गई थी कि भार ढोने की शक्ति न होने पर ब्रजेश्वर भार लेनेवाला आदमी नहीं।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

तब भूतनाथ जाने का उद्योग शुरू हुआ। रंगराज को वहाँ से बिदा करने की बात तय हुई। क्योंकि, व्रजेश्वर के दरबानों ने एक दिन उसकी लाठी की मार खाई थी। देखने पर पहचान लेंगे। रंगराज को बुलाकर कुल बातें समझा दी गईं। कुछ निशि ने समझाईं, कुछ प्रफुल्ल ने स्वयं बुलाकर। रंगराज रोया, कहा, "माँ, तुम हम लोगों को छोड़ जाओगी, यह कभी नहीं मालूम हुआ।" सब ने मिलकर रंगराज को सान्त्वना दी। देवी-गढ़ में प्रफुल्ल का घर द्वार, देव-सेवा और देवोत्तर सम्पत्ति थी। वह सब प्रफुल्ल ने रंगराज को दी। कहा—वहीं जाकर रहो। देवता का भोग लगता है, प्रसाद पाकर समय पार करना। फिर कभी लाठी न उठाना। तुम लोग जिसे परोपकार कहते हो, वह वास्तव में पर-पीडन है। लाठी और ठेंगे से परोपकार नहीं होता। दुष्टों का दमन राजा नहीं करते तो ईश्वर करेंगे; हम तुम कौन हैं? शिष्ट के पालन का भार लेना, परन्तु दुष्ट के दमन का भार ईश्वर पर रखना। ये सब बातें मेरी तरफ़ से भवानी महाराज से कहना। उनसे मेरा कोटि-कोटि प्रणाम कहना।

रंगराज रोता हुआ बिदा हुआ। दिवा और निशि साथ-साथ भूतनाथ के घाट तक चलीं। उसी बजरे से लौट कर वे

लोग देवीगढ़ में जाकर रहेंगी, प्रसाद पायेंगी और ईश्वर का नाम लेंगी। बजरे में देवी की रानीगरी के असबाब थे, पाठकों ने देखे हैं, उनकी क़ीमत बहुत है। प्रफुल्ल ने सब दिवा और निशि को दिये। कहा, "ये सब बेच कर जो कुछ प्राप्त होगा, उससे तुम्हें जो जरूरत हो खर्च करना। बाक़ी ग़रीबों को देना। यह सब मेरा कुछ नहीं। मैं इसका कुछ भी नहीं लूँगी।" यह कहकर प्रफुल्ल ने अपने बहुमूल्य वस्त्र और अलंकार निशि और दिवा को दिये।

निशि ने कहा—माँ, बिना कुछ पहने हुए ससुराल जाओगी?

प्रफुल्ल ने ब्रजेश्वर को दिखाकर कहा—स्त्री का यह आभरण सब से उत्तम है। दूसरा आभरण और क्या होगा?

निशि ने कहा—आज तुम पहले-पहल ससुराल जा रही हो, मैं आज तुम्हें कुछ दहेज देकर आशीर्वाद करूँगी। तुम मना न करना, यह मेरी अन्तिम साध है। साध पूरी कर लेने दो।

अब निशि कुछ बहुमूल्य रत्नालंकारों से प्रफुल्ल को सजाने लगी। पाठकों को याद होगा, निशि जब एक रानी के पास रहती थी, रानी ने उसे अनेक अलंकार दिये थे। ये वही गहने हैं। देवी ने उसे नये गहने बनवा दिए थे, इसलिये वह इन गहनों को नहीं पहनती थी। इस समय देवी को निराभरणा देखकर वे गहने पहनाये। इसके बाद दूसरा काम नहीं था, तीनों रोने लगीं। तीनों का आन्तरिक प्रेम था। प्रफुल्ल का मन आनन्द से भरा था, इसलिए उसकी ओर से नर्मी थी। निशि ने भी

देखा, प्रफुल्ल का मन सुख से भरा है। इस सुख से निशि भी सुखी हुई, रोने में वह भी कुछ नर्म रही। जिधर से जो कुछ त्रुटि थी, वह दिवा देवी ने पूरी कर ली।

यथासमय बजरा भूतनाथ के घाट पर पहुँचा। वहाँ दिवा और निशि के पैरों की धूल लेकर प्रफुल्ल उनसे विदा हुई। वे रोती हुई उस बजरे में लौटकर यथासमय देवीगढ़ पहुँचीं। माझी, मल्लाह और बरकन्दाजों की तनख्वाह का हिसाब कर उन्हें बरखास्त कर दिया। बजरा रखना ठीक नहीं, क्योंकि यह पहचाना हुआ बजरा है। प्रफुल्ल ने कह दिया था, इसे मत रखना। निशि ने बजरे के चैल करा लिये और दो साल तक उसकी लकड़ी जलाई।

बारहवाँ परिच्छेद

भूतनाथ के घाट में प्रफुल्ल का बजरा भिड़ते ही कौन जाने कहाँ से गाँव भर में यह ख़बर फैल गई कि ब्रजेश्वर एक और विवाह कर लाया है, कहते हैं, बड़ी पुरायँठ बहू है। लड़के, बूढ़े, काने, लँगड़े, जो जहाँ थे, सब बहू देखने दौड़े। जो रसोई में थी, वह रसोई छोड़कर दौड़ी। जो भाजी कतर रही थी, वह भाजी छोड़कर भागी। जो नहा रही थी, वह गीले कपड़े से बढ़ी। जो भोजन कर रहा था, उसका अधपेट भोजन ही हुआ। जो झगड़ा कर रही थी, दुश्मन से एकाएक उसकी सुलह हो गई। जो औरत लड़के को ठोंक रही थी, उसका लड़का उस दफ़ा बच गया; माँ की गोद पर चढ़कर पुरायँठ बहू देखने चला। किसी के पति भोजन में बैठे हैं, थाली में दाल-तरकारी आई है, खीर अभी नहीं आई, ऐसे समय बहू की ख़बर पहुँची; उनके भाग्य में उस दिन खीर रह ही गई। अभी-अभी एक बुढ़िया नातिन से झगड़ रही थी—"मेरा हाथ पकड़कर न ले जाने पर मैं किस तरह तालाब के किनारे जाऊँ?" ऐसे समय शोर उठा, बहू आई है, नातिन उसी वक़्त दादी को छोड़कर बहू देखने दौड़ी, दादी भी किसी तरह वहाँ जाकर हाज़िर हुई। एक युवती माँ से बकी जाकर क़समें खा रही थीं कि वे कभी घर के अहाते से बाहर नहीं निकलतीं। ऐसे समय बहू आने

की ख़बर पहुँची, क़सम पूरी नहीं उतरी। युवती बहू के घर की तरफ़ दौड़ी। माँ बच्चे को छोड़कर दौड़ी, बच्चा माँ के पीछे-पीछे रोता हुआ दौड़ा। जेठ और पति बैठे हैं, भैहू ने नहीं माना, घूँघट काढ़कर सामने से चली गई। दौड़ते हुए, युवतियों की धोती सरक गई, उन्हें सँभालने की फ़ुर्सत नहीं रही। जूड़ा खुल गया, फिर से बाँध लेने का अवकाश नहीं रहा। सँभालते वक्त कहाँ का कपड़ा कहाँ खींचा, इसका भी ख़याल नहीं रहा। ग़दर मच गया। लाज से लज्जादेवी भाग खड़ी हुइ।

वर-वधू आकर पीढ़े पर खड़े हुए। गृहिणी परछन कर रही हैं। बहू का मुँह देखने के लिए लोग झुके हैं। परन्तु बहू बहूपने की चाल नहीं छोड़ती, डेढ़-हाथ घूँघट काढ़े हुए है। किसी को मुँह देखने को नहीं मिल रहा। परछन करते वक़्त सास ने एक दफ़ा घूँघट उठाकर बहू का मुँह देखा। कुछ चौंक उठीं, और कुछ नहीं कहा, सिर्फ़ कहा; "अच्छी बहू है।" उनकी आँखें कुछ सजल हो आईं।

परछन हो जाने पर बहू को घर ले जाकर सासु ने इकट्ठी हुई पड़ोसिनों से कहा—माँ, मेरे बेटा-बहू बहुत दूर से आ रहे हैं, भूख-प्यास के मारे हैं। मैं अभी इन्हें खिलाऊँ-पिलाऊँ। घर की बहू घर में ही तो है, तुम रोज़ देखोगी, अभी घर जाओ, खाओ पियो जाकर।

गृहिणी की इस बात से नाराज़ होकर निन्दा करती हुई पड़ोसिनें घर गईं। क़ुसूर गृहिणी का था, लेकिन निन्दा हुई बहू की

ज़्यादा। क्योंकि, बड़ा एक किसी को मुँह देखने को नहीं मिला। पुरायँठ बहू है, कहकर सबने घृणा ज़ाहिर की। फिर सबने कहा, "कुलीनों के यहाँ ऐसा बहुत होता है।" तब जिसने जहाँ कुलीन के घर में पुरायँठ बहू देखी है, उसका क़िस्सा सुनाने लगी। गोविन्द मुखोपाध्याय ने पचपन साल की उम्र की एक लड़की से ब्याह किया था, हरि चट्टोपाध्याय सत्तर साल की एक कुमारी ब्याह लाये थे, मनु वन्द्योपाध्याय ने, एक बुढ़िया के मर जाने पर गंगालाभ के समय, ब्याह कर उसका कुमारीपन छुड़ाया था; ये कहानियाँ अलंकार के साथ रास्ते पर कही जाने लगीं। इस तरह का आन्दोलन करके क्रमशः गाँव ठण्ढा पड़ा।

शोर-गुल मिट गया। गृहिणी ने एकान्त में व्रजेश्वर को बुलाया। व्रज ने आकर पूछा, क्या है, माँ ?

गृहिणी—यह बहू कहाँ मिली, बेटा ?

व्रज—यह नई शादी नहीं, माँ।

गृ०—बेटा, यह खोया धन फिर कहाँ पाया तुमने ?

गृहिणी की आँखों से आँसू गिर रहे थे।

व्रज—माँ, विधाता ने दया करके फिर दिया है। अभी माँ, तुम पिताजी से कुछ न कहना। एकान्त में मैं ही कुल बातें उनसे खोलकर कहूँगा।

गृ०—तुम्हें कुछ नहीं कहना होगा, बेटा; सब मैं ही कहूँगी। थाली-छुआई हो जाय, तुम कुछ सोचना मत। अभी किसी से कुछ मत कहना।

व्रजेश्वर स्वीकृत हुआ। इस कठिन कार्य का भार माँ ने लिया। व्रजेश्वर बचा। किसी से कुछ नहीं कहा।

थाली-छुआई निर्विघ्न रूप से हो गई। बड़ा धूमधड़क्का कुछ नहीं हुआ! सिर्फ़ कुछ आत्मीय रिश्तेदारों को न्योता देकर हरवल्लभ ने रीति पूरी की।

पाक-स्पर्श के बाद गृहिणी ने असली बात हरवल्लभ से खोलकर कही। कहा—यह नई शादी नहीं, यह वही बड़ी बहू है।

हरवल्लभ चौंक उठे। सोते बाघ को जैसे तीर मारा।—ऐं! वही बड़ी बहू है, किसने कहा?

गृहिणी—मैंने पहचाना है, और व्रज ने भी मुझसे कहा है।

हर—वह, दस साल हुए, मर जो गई है।

गृ०—मरा आदमी भी कभी लौटता है?

हर—इतने दिन वह स्त्री कहाँ किसके पास थी?

गृ०—यह मैंने व्रजेश्वर से नहीं पूछा। पूछूँगी भी नहीं। व्रज जब घर ले आया है, तब बिना समझे-बूझे नहीं ले आया।

हर—मैं पूछता हूँ।

गृ०—तुम्हें मेरे सर की क़सम, तुम एक बात भी न कहना। एक दफ़ा तुम बोले थे, उसके फल से मैं लड़का खोने पर थी। मेरे एक लड़का है। मेरे सर की क़सम, तुम एक बात भी न कहना। अगर तुम कोई बात कहोगे तो गले में फाँसी लगा लूँगी।

हरवल्लभ छोटे पड़ गये। एक बात भी न बोले। सिर्फ़ कहा—तो फिर आदमियों में नई शादी की बात ही फैली रहे।

गृहिणी ने कहा—ऐसा ही होगा।

दूसरे समय गृहिणी ने ब्रजेश्वर को यह ख़ुशख़बरी दी। कहा—मैंने उनसे कहा था। वे कोई बात नहीं कहेंगे। उन सब बातों की बड़ी चर्चा का कोई काम नहीं।

ख़ुश होकर ब्रज ने प्रफुल्ल को ख़बर दी।

हम स्वीकार करते हैं, इस दफ़ा गृहिणी ने बड़ा गृहिणीपन किया। जिस गृहस्थी में गृहिणी गृहिणीपन जानती है, उसमें किसी का दिल नहीं दुखता। माझी हाल पकड़ना जाने तो नाव के लिए डर क्या?

तेरहवाँ परिच्छेद

प्रफुल्ल ने सागर को देखना चाहा। ब्रजेश्वर का इशारा पाकर गृहिणी ने सागर को बुलाने आदमी भेजा। गृहिणी की भी साध है, तीनों बहुओं को एक जगह करें।

जो आदमी सागर को बुलाने गया था, उसके मुँह सागर ने सुना, पति एक और विवाह कर लाये हैं, स्त्री बूढ़ी है। सागर को बड़ी घृणा हुई। छिः! बूढ़ी स्त्री! सागर को बड़ा गुस्सा आया, फिर विवाह? हम क्या स्त्री नहीं हैं? दुःख हुआ, विधाता ने मुझे दुखी घर की लड़की क्यों नहीं किया? मैं अगर पास रह पाती तो वे शायद दूसरी शादी न करते।

इस तरह बदली और नाराज़ होकर सागर ससुराल आई। आते ही पहले नयनबहू के घर गई। नयनबहू सागर की दोनों आँखों की किरकिरी है। सागर बहू नयन के लिए भी वैसी ही। परन्तु आज दोनों एक हैं, दोनों की एक ही विपत्ति है। इसी लिए सोचकर सागर पहले नयनतारा के पास गई।

साँप को हण्डी में भरने पर जैसे वह फुफकार मारता रहता है, प्रफुल्ल के आने के बाद से नयनतारा वैसा ही कर रही थी। सिर्फ़ एक दफ़ा ब्रजेश्वर से मुलाक़ात हुई थी—गालियों की ऐसी बौछार कि ब्रजेश्वर को भागते ही बना। फिर नहीं आया।

प्रफुल्ल भी मेल करने गई थी, परन्तु उसकी भी वही दशा हुई। पति और सौत तो दूर, टोला-पड़ोस की औरतें भी उधर कुछ दिन नयनतारा के पास नहीं आ सकीं। नयनतारा के कई लड़के-लड़कियाँ थीं। उन्हीं पर आफ़त ज्यादा टूटी। इधर कुछ दिन मार खाते-खाते उनकी जान की आ पड़ी।

इसी देवी के घर में पहले-पहल सागर ने जाकर दर्शन दिये। देखकर नयनतारा ने कहा—आओ, आओ, तुम क्यों बाक़ी रहो? और कोई हिस्सा बँटानेवाली है?

सागर—सुनती हूँ, फिर विवाह किया है?

नयन—क्या मालूम, विवाह है या निकाह, यह ख़बर मुझे क्या मालूम?

सागर—ब्राम्हन की लड़की का भी कहीं निकाह होता है?

नयन—ब्राम्हन है या शूद्र, या मुसलमान, मैं क्या देखने गई हूँ?

सागर—ऐसी बातें मुँह में न लाना। अपनी जाति बचा कर सब लोग बातें करते हैं।

नयन—जिसके घर ऐसी बूढ़ी दूल्हन आई, उसकी फिर जाति क्या है?

सागर—कितनी बड़ी है?—हम लोगों की उम्र होगी?

नयन—तेरी माँ की उम्र की है।

सागर—बाल पके हैं?

नयन—बाल न पके होते तो बूढ़ी औरत दिनरात घूँघट काढ़े घूमती?

सागर—दाँत गिरे हैं ?

नयन—बाल पके तो दाँत नहीं गिरे ?

सागर—तो पति से उम्र में बड़ी है कहो ?

नयन—फिर सुन क्या रही है ?

सागर—ऐसा ही होता है ?

नयन—कुलीन के घर में यह सब होता है।

सागर—देखने में कैसी है ?

नयन—रूप की ध्वजा ! जैसे गलफुल्ली गोविन्दी की अम्मा !

सागर—जिसने ब्याह किया है, उससे कुछ नहीं कहा ?

नयन—देख कहाँ पाती हूँ ? देख पाऊँ तो बताऊँ। झाड़ू का सिरा सँभाल रक्खा है।

सागर—तो मैं वह सोने की प्रतिमा देख आऊँ।

नयन—जा, जन्म सार्थक कर, जा।

नई सौत को खोजकर सागर ने तालाब के घाट पर उसे पकड़ा। प्रफुल्ल पीछे फिरकर बासन माँज रही थी। पीछे से सागर ने पूछा—क्यों जी, तुम हमारी नई बहू हो ?

"कौन, सागर आई हो ?" कहकर नई बहू ने मुँह फेरा। सागर ने देखा, कौन है। तअज्जुब में आकर कहा,—देवी रानी !

प्रफुल्ल ने कहा—चुप। देवी मर गई है।

सागर—प्रफुल्ल ?

प्र०—प्रफुल्ल मर गई है।

सा०—कौन हो तब तुम ?

प्र०—मैं नई बहू हूँ।

सा०—किस तरह क्या हुआ, सब मुझसे कहो।

प्र०—यह कहने की जगह नहीं। मुझे एक कमरा मिला है, वहीं चलो, सब कहूँगी।

दोनों स्त्रियाँ द्वार बन्द कर एकान्त में बैठकर बातचीत करती रहीं। प्रफुल्ल ने सागर को सब समझाकर कहा। सुनकर सागर ने पूछा—अब क्या गृहस्थी में मन लगेगा? चाँदी के सिंहासन पर बैठकर, हीरे का मुकुट पहनकर, रानीगिरी के बाद क्या बासन माँजना, घर बुहारना अच्छा लगेगा? योगशास्त्र के बाद क्या बूढ़ी दादी की रूपकथा अच्छी लगेगी? जिसके हुक्म पर दो हज़ार आदमी काम करते थे, उसेइस समय हारी की माँ और पारी की माँ की ख़िदमत अच्छी लगेगी?

प्र०—अच्छा लगेगा, इसी लिए आई हूँ। यही धर्म स्त्री का धर्म है। राज्य करना स्त्री-जाति का धर्म नहीं। कठिन धर्म भी यह संसार धर्म है। इससे अधिक मुश्किल कोई भी योग नहीं। देखो, कुछ निरक्षर, स्वार्थपर अनजान आदमियों को लेकर हमें रोज़ व्यवहार करना पड़ता है। इनमें से किसी को कोई दुःख न हो, सभी सुखी रहें, वही व्यवस्था करनी होगी। इससे कौन संन्यास कठिन है? इससे कौन पुण्य बड़ा पुण्य है? मैं यही संन्यास करूँगी।

सा०—तो मैं कुछ दिन तुम्हारे पास रहकर तुम्हारी शिष्या हूँगी।

जब सागर के साथ प्रफुल्ल की ये बातें हो रही थीं, दादी के पास व्रजेश्वर भोजन करने बैठे थे। दादी ने पूछा—क्यों बिरजू, अब कैसा पकाती हूँ ?

व्रजेश्वर को वह दस साल बीती बात याद आई। बात क़ीमती है, इसलिए दोनों को याद थी। व्रजेश्वर ने कहा—अच्छा पकाती हो।

दादी—अब गौ का दूध कैसा होता है ? बिगड़ता है ?

व्रज—अच्छा दूध है।

दादी—दस साल हुए, मुझे गङ्गालाभ तो नहीं कराया तूने ?

व्रज—भूल गया था।

दादी—तू मुझे गङ्गा न ले जाना, तू बान्दी हो गया है।

व्रज—चुप रहो, वह बात नहीं।

दादी—अच्छा, ले जाना, ले जा सके तो गङ्गाजी ले जाना। मैं अब बातचीत नहीं करूँगी, परन्तु भई, कोई जैसे मेरा चरखा-वरखा न तोड़े।

चौदहवाँ परिच्छेद

कुछ महीने रहकर सागर ने देखा, प्रफुल्ल ने जो कुछ कहा था, वह किया। गृहस्थी के सबको सुखी किया। सासु प्रफुल्ल से इतनी सुखी हैं कि प्रफुल्ल के हाथ कुल गृहस्थी का भार देकर सिर्फ सागर के लड़के को गोद में लेकर घूम रही हैं। क्रमशः ससुर की समझ में भी प्रफुल्ल के गुण आये। अन्त में जिस काम में प्रफुल्ल का हाथ नहीं लगता था, वह उन्हें पसन्द नहीं आता था। सास-ससुर प्रफुल्ल से पूछे बिना कोई काम नहीं करते थे, उसकी बुद्धि और विवेचना पर उनकी इतनी भी श्रद्धा हुई। दादी ने भी रसोई का भार प्रफुल्ल पर छोड़ दिया। बुड्ढी अब बहुत-एक भोजन नहीं पका सकती। तीनों बहुएँ पकाती हैं; परन्तु जिस दिन प्रफुल्ल दो-एक चीजें नहीं पकाती थी, उस दिन किसी को खाना रुचता ही नहीं था। जिसकी थाली के पास प्रफुल्ल खड़ी नहीं होती थी, वह सोचता था, अधपेट खाना ही खाया। अन्त में नयनबहू भी वशीभूत हुई। और प्रफुल्ल से झगड़ा करने नहीं आती थी। प्रफुल्ल से समझे बिना कोई काम नहीं करती थी। देखा, नयनतारा के लड़कों की प्रफुल्ल जैसी सेवा करती है, नयनतारा वैसी नहीं कर पाती। नयनतारा प्रफुल्ल के हाथ में लड़कों को सौंपकर निश्चिन्त हुई। सागर बाप के यहाँ ज्यादा दिनों तक नहीं रह सकी। फिर आई। प्रफुल्ल

के पास रहने पर वह जैसी सुखी होती थी, वैसी और कहीं भी नहीं।

ये सब, सही है कि दूसरे के लिए मुश्किल, तअज्जुब में डालने-वाली बातें हैं, परन्तु प्रफुल्ल के लिए नहीं। क्योंकि प्रफुल्ल ने निष्काम धर्म का अभ्यास किया था। प्रफुल्ल गृहस्थी में आकर ही यथार्थ संन्यासिनी हुई थी। उसकी कोई कामना नहीं थी, सिर्फ़ काम खोजती थी। कामना का अर्थ है अपने सुख की तलाश करना, काम का अर्थ है दूसरे के सुख की खोज करना। प्रफुल्ल निष्काम है; फिर भी काम करती हुई। इसी लिए प्रफुल्ल यथार्थ संन्यासिनी है। इसी लिए प्रफुल्ल जो कुछ छूती थी, वही सोना होता था। प्रफुल्ल भवानी महाराज का शान पर चढ़ाया अस्त्र है, संसार की ग्रन्थियों को अनायास ही उसने काट दिया, अथच हरवल्लभ के यहाँ कोई समझ भी नहीं पाया कि प्रफुल्ल ऐसी तेज़ तलवार है। वह जो अद्वितीय महामहोपाध्याय की शिष्या है, स्वयं परम पण्डिता, यह बात दूर रही; किसी ने यह भी नहीं जाना कि प्रफुल्ल को अक्षर-परिचय भी है। गृहस्थी में विद्या ज़ाहिर करना आवश्यक नहीं। गृह-धर्म विद्वान् ही पूरा उतार सकते हैं. परन्तु विद्या ज़ाहिर करने की जगह वह नहीं। जहाँ विद्या-प्रकाश की जगह नहीं, वहाँ जिसकी विद्या प्रकाश पाती है, वही मूर्ख है। जिसकी विद्या प्रकाशित नहीं होती, वही यथार्थ पण्डित है।

प्रफुल्ल की जो कुछ तकरार थी, वह व्रजेश्वर के साथ। प्रफुल्ल कहती थी, "मैं अकेली तुम्हारी स्त्री नहीं। तुम जिस तरह मेरे हो

उसी तरह सागर के हो, उसी तरह नयन बहू के। मैं अकेली तुम पर भोग का दख़ल नहीं रक्खूँगी। स्त्री के देवता पति हैं। वे तुम्हारी पूजा क्यों नहीं कर पातीं? ब्रजेश्वर का हृदय केवल प्रफुल्लमय है। प्रफुल्ल कहती थी, मुझे जैसा प्यार करते ही उन्हें भी वैसा प्यार न करने पर मुझ पर तुम्हारा प्यार पूरा न हुआ। वे भी मैं हूँ।" ब्रजेश्वर यह नहीं समझता था।

प्रफुल्ल की सांसारिक बुद्धि, बुद्धि की प्रखरता और अच्छी विवेचना के कारण संसार के हिसाब भी उसके हाथ आये। तअल्लुक़े का काम बाहर होता था सही, लेकिन ज़रा भी विवेचन की बात उठने पर मालिक गृहिणी से आकर कहते थे, "नई बहू रानी से पूछो तो सही; वे क्या कहती हैं?" प्रफुल्ल की सलाह से सब काम होने लगे, इसलिए दिन पर दिन लक्ष्मी प्रसन्न होती रहीं। अन्त में यथासमय धन और जन से भरे-पूरे होकर हरवल्लभ परलोक सिधारे।

सम्पत्ति ब्रजेश्वर की हुई। प्रफुल्ल के गुण से ब्रजेश्वर के नया तअल्लुक़ा भी हाथ आया और नक़द काफ़ी रुपया भी जम गया। तब प्रफुल्ल ने कहा—मेरा वह पचास हज़ार रुपये का क़र्ज़ अदा करो।

ब्रज—क्यों, तुम रुपया लेकर क्या करोगी?

प्र०—मैं कुछ नहीं करूँगी, परन्तु रुपया मेरा नहीं—श्रीकृष्णजी का है; कङ्गाल ग़रीबों का; कङ्गाल-ग़रीबों को देना होगा।

ब्रज—किस तरह?

प्र०—पचास हज़ार रुपये की अतिथिशाला बनवाओ।

व्रजेश्वर ने वैसा ही किया। अतिथिशाला में अन्नपूर्णा की एक मूर्ति स्थापित की; अतिथिशाला का नाम रक्खा "देवी-निवास।"

यथासमय पुत्र और पौत्रों से घिरी रहकर प्रफुल्ल स्वर्ग सिधारी। देश के लोगों ने कहा, हम बिना माता के हुए।

रङ्गराज, दिवा और निशि देवीगढ़ में श्रीकृष्णचन्द्र का प्रसाद पाते जीवन-निर्वाह करते हुए परलोक गये। भवानी महाराज के भाग्य में वैसा नहीं हुआ।

अँगरेज़ों ने शासन का भार लिया। राज्य का सञ्चालन सुधरा। इसलिए भवानी महाराज का काम पूरा हुआ। राजा ही दुष्टों का दमन करने लगे। भवानी महाराज ने डाका बन्द किया।

तब भवानी महाराज ने सोचा, मेरा प्रायश्चित्त ज़रूरी है। यह सोचकर भवानी महाराज ने अँगरेज़ों को आत्म-समर्पण किया, दण्ड की प्रार्थना की। अँगरेज़ों ने आजीवन कालेपानी की सज़ा दी। भवानी पाठक प्रसन्नतापूर्वक कालेपानी गये।

अब आओ, प्रफुल्ल! एक दफ़ा लोगों के बीच खड़ी हो,—हम तुम्हें देखें। एक दफ़ा इस समाज के सामने खड़ी होकर कहो तो—मैं नई नहीं, मैं पुरानी हूँ। मैं वही वाक्य भर हूँ। कितनी बार आई हूँ, तुम लोग मुझे भूल गये हो। इसी लिए फिर आई—

"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥"

—